शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 9 अंक : 2   1 सितम्बर 2016

(भाद्रपद-आश्विन, विक्रम संवत् 2073)

संरक्षक
मुकुन्द कुलकर्णी
के.नरहरि

❖

परामर्श
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक
सन्तोष पाण्डेय

❖

उप सम्पादक
विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी
भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
डॉ. नाथू लाल सुमन
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी
बसन्त जिन्दल
नौरंग सहाय भारतीय
कार्यालय प्रभारी
आलोक चतुर्वेदी : 9782873467

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राज.) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 011-22914799

E-mail:
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at:
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/- वार्षिक शुल्क 200/-
आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पारदर्शिता और जवाबदेही कितनी जरूरी ❑ बजरंगी सिंह

शिक्षा अधिकार अधिनियम समाज के हर वर्ग और अंतिम व्यक्ति तक शिक्षा पहुँचाने के लिए केवल निर्देश देता दिखाई देता है पर यह कैसे संभव हो कि इसका समाधान हो सके। इसके लिए यह कानून कोई स्पष्ट निर्देश नहीं देता है। जिसके कारण राज्य सरकारें इन व्यवस्थाओं पर कतराती नजर आती हैं। शिक्षाधिकार गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा के लिए केवल शिक्षकों को बाध्य करता है। जबकि यह एक त्रिध्रुवी प्रक्रिया है जिसमें अभिभावक को जवाबदेही बताए बिना शत प्रतिशत परिणाम की उम्मीद करना व्यर्थ है। कानून इस व्यवस्था से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति की जवाबदेही तय करता है। यही कारण है कि आज तक स्कूलों में छात्रों की उपस्थिति तक हम तय नहीं कर सके।

14

अनुक्रम

4.	शिक्षा में जवाबदेही : कठोर कदम आवश्यक	- सन्तोष पाण्डेय
7.	शैक्षिक जवाबदेही सभी का उत्तरदायित्व	- प्रो. मधुर मोहन रंगा
10.	जवाबदेह हो शिक्षा प्रशासन	- विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी
12.	शिक्षा में तय हो प्रशासन की जवाबदेही	- डॉ. रेखा भट्ट
16.	जवाबदेही से मुक्त शिक्षा व्यवस्था	- विजन कुमार पांडेय
21.	Accountability in Higher Education	- Dr. Alpana Kateja
23.	Elephant In The Room	- Geeta Gandhi Kingdon
25.	सबको समान शिक्षा का सपना	- संकलन
27.	Interview - MHRD	- Sh. Prakash Javadekar
29.	हिंदी में विभ्रम की स्थिति	- डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल
31.	बोली, भाषायें : अस्तित्व पर मंडराता खतरा	- लोकमित्र
33.	हिन्दी के उत्थान में रत केन्द्रीय हिन्दी संस्थान...	- संकलन
37.	निष्काम शिक्षाविद् - डॉ. एस. राधाकृष्णन	- बजरंग प्रसाद मजेजी
40.	गतिविधि	

Education and Accountability ❑ Dr. TS Girishkumar

For Bharat, accountability at once acquires the basis as the Vedopanishadic knowledge tradition. The Vedopanishadic knowledge tradition gave rise to a Sanskriti, that we call today the Bharatiya Sanskriti. From this Bharatiya Sanskriti evolves the transcendental longing of human consciousness towards the 'beyond' which becomes the Dharma. This precisely becomes the postulate, the basis for any concept of accountability in Bharatiya context.

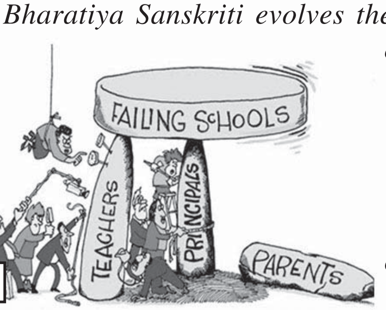

18

संपादकीय

शिक्षा में जवाबदेही: कठोर कदम आवश्यक

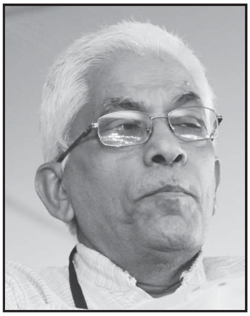

शिक्षा तंत्र के विकास के साथ ही शिक्षा को प्रासंगिक, गुणवत्तापूर्ण, स्वावलंबी एवं राष्ट्रीय उद्देश्यों के प्रति जिम्मेदार बनाने को दृष्टिगत कर अनेक शिक्षा आयोग, अध्ययन दल बने व सर्वेक्षण, मूल्यांकन के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ बनायी गई। समयानुकूल परिवर्तन व परिवर्द्धन भी किये गये। ये सभी प्रयत्न सुयोग्य नागरिक बनाने व शिक्षा के राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल नहीं हो सके। आज शिक्षा विद्यार्थियों को नैतिक रूप से सबल, समाज व संस्कृति के प्रति जागरूक, व्यक्तिगत क्षमताओं के पूर्ण विकास, रोजगार सृजनकर्ता, नये ज्ञान के सृजन के लिये जिज्ञासु मन:स्थिति निर्मित करने में समर्थ नहीं हो पा रही है। संपूर्ण शिक्षा तंत्र एक अस्त-व्यस्तता की स्थिति में कार्य करता हुआ प्रतीत होता है, इन सबके मूल में एक ही तत्व जिम्मेवार है, वह है शिक्षा में जवाबदेही का अभाव।

❑ **सन्तोष पाण्डेय**

भारत का शिक्षा तंत्र चीन के पश्चात् विश्व का दूसरा सबसे बड़ा शिक्षा तंत्र है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा का बहुआयामी विकास हुआ है। देश में शिक्षारत विद्यार्थियों की संख्या 25 करोड़ से अधिक हो चुकी है। प्राथमिक शिक्षा में नामांकन लगभग पूर्णता की ओर है। उच्च शिक्षा में नामांकन दर 20 प्रतिशत से अधिक हो चुकी है। समाज में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ने के साथ ही अपेक्षायें भी तीव्र गति से बढ़ी हैं। केंद्र व राज्य सरकारों ने शिक्षा पर बजट राशि का आवँटन बढ़ाया है। यद्यपि यह आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है। तथापि देश में शिक्षा के प्रति बदलते दृष्टिकोण से संख्यात्मक विस्तार को एक सीमा तक संतोषजनक कहा जा सकता है, परन्तु गुणात्मक दृष्टि से शिक्षा में चिन्तनीय गिरावट आयी है। प्राथमिक शिक्षा में तीव्र गिरावट अनेक सर्वेक्षणों व जाँच प्रतिवेदनों से प्रकट होती है। छात्रों के सीखने के स्तर में गंभीर कमी निकली है। उच्च शिक्षा में तीव्र गिरावट दिखायी देती है। उच्च शिक्षा प्राप्त डिग्री, डिप्लोमाधारियों की निम्न रोजगारपरकता उन्हें लगभग अकुशल श्रमिक की श्रेणी के निकट ला देती है। शिक्षा तंत्र के विकास के साथ ही शिक्षा को प्रासंगिक, गुणवत्तापूर्ण, स्वावलंबी एवं राष्ट्रीय उद्देश्यों के प्रति जिम्मेदार बनाने को दृष्टिगत कर अनेक शिक्षा आयोग, अध्ययन दल बने व सर्वेक्षण, मूल्यांकन के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ बनायी गई। समयानुकूल परिवर्तन व परिवर्द्धन भी किये गये। ये सभी प्रयत्न सुयोग्य नागरिक बनाने व शिक्षा के राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल नहीं हो सके। आज शिक्षा विद्यार्थियों को नैतिक रूप से सबल, समाज व संस्कृति के प्रति जागरूक, व्यक्तिगत क्षमताओं के पूर्ण विकास, रोजगार सृजनकर्ता, नये ज्ञान के सृजन के लिये जिज्ञासु मन:स्थिति निर्मित करने में समर्थ नहीं हो पा रही है। संपूर्ण शिक्षा तंत्र एक अस्त-व्यस्तता की स्थिति में कार्य करता हुआ प्रतीत होता है, इन सबके मूल में एक ही तत्व जिम्मेवार है, वह है शिक्षा में जवाबदेही का अभाव। शिक्षा के संख्यात्मक विस्तार के साथ शिक्षा से संबद्ध सभी पक्ष चाहे वे शिक्षक हों, शिक्षा प्रशासक हों या अभिभावक या नीति निर्धारिक सभी का नैतिक प्रभाव (Moral Force) क्षीण हुआ है, शिक्षक एक भविष्य निर्माता के मिशन से हटकर मात्र वेतन भोगी कर्मचारी बन रहा है, प्रबंधन व शिक्षा प्रशासक केवल और केवल शासक व अधिकारी बन रहे हैं। समाज व राजनीतिज्ञ, शिक्षा में ऐसे आदर्शों के कल्पनालोक में विचरण कर

रहे हैं। जिनकी प्राप्ति के लिये न तो पर्याप्त आर्थिक व भौतिक संसाधन है और न ही उन्हें क्रियान्वित करने की दृढ़ इच्छाशक्ति। ये सभी बातें शिक्षा में जिम्मेदारी, जवाबदेही या उत्तरदायित्व के अभाव को प्रकट करती हैं। वास्तव में शिक्षा सुखद, समृद्ध व सुरुचिपूर्ण जीवन निर्माण की प्रथम आवश्यकता है। शिक्षा एक बहुपक्षीय गतिविधि है। यह शिक्षक, विद्यार्थी, गैर शिक्षण कर्मचारी, अभिभावक, शिक्षा प्रशासन, परीक्षक, लेखक, प्रकाशक, राजनेता, सरकार व सरकारी नीतियाँ, समाज व अन्य सभी शिक्षा से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध हैं, और इस पर गहरा प्रभाव डालते हैं। यदि ये सभी घटक अपने -अपने अपेक्षित दायित्व का निर्वाह करते हैं, तो ही शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकेगी।

भारत में हजारों वर्षों में पुष्पित-पल्लवित ज्ञान व्यवस्था है जिसको गुरु, शिष्य परम्परा ने पुष्ट किया। शिक्षा को सबसे बड़ी मानव सेवा माना गया है। भारतीय शिक्षा परंपरा में गुरु सदैव शिष्य से ही परास्त होने की कामना करता है। इससे ही ज्ञान की श्रृंखला आगे बढ़ती है। शिक्षक के लिये शिक्षा प्रदान करना एक मिशन और जीवन का ध्येय होता था, जिसका परिहरण अकल्पनीय था। शिक्षक को दायित्वबोध कराने की कदाचित् ही आवश्यकता होती थी। देश में शिक्षा के प्रसार व प्रचार से स्थिति में बड़ा परिवर्तन आया। शिक्षक बनना सबसे आसान आजीविका अर्जन का साधन माना जाने लगा। शिक्षक तत्व विहीन शिक्षकों की संख्या बढ़ी एवं समाज में धारणा बनी जो जीवन में कुछ भी प्राप्त करने योग्य नहीं था, वह शिक्षक बन गया। इस प्रक्रिया में शिक्षा में दायित्त्व बोध तिरोहित हो गया। परन्तु मनोयोग से शिक्षक धर्म निभाने के कारण-पतन उतना नहीं हो पाया। जैसे-जैसे-शिक्षा, शिक्षक के रूप में रोजगार सृजन का बड़ा स्रोत बना, वैसे-वैसे ही यह मिशनरी उत्साह भी समाप्त हुआ और कर्मचारी भाव की वृद्धि हुई। अनेक शिक्षा आयोगों व समितियों ने इस परिवर्तन की ओर इंगित किया और इसे व्यवस्थित रूप देने का प्रयास किया। शिक्षकों की शैक्षणिक योग्यताओं में वृद्धि की गई। शिक्षक प्रशिक्षण पर बल दिया गया और शिक्षक के दायित्त्वों को निर्धारित किया गया। शिक्षकों की सेवा शर्तों में व्यापक सुधार किया गया, परन्तु शिक्षकों की बढ़ती संख्या के अनुरूप शैक्षिक प्रशासन उतना चुस्त दुरुस्त न रह सका। सरकारी नीतियों, राजनीतिक हस्तक्षेप, सरकारी शिक्षण संस्थाओं में मनचाहे स्थानांतरण निजी शिक्षण संस्थानों का अनियंत्रित विस्तार व शिक्षक संगठनों की बढ़ती दखलन्दाजी व विभिन्न प्रकार की लॉबिंग (Lobbing) ने संपूर्ण शिक्षा तंत्र को ऐसा जकड़ा है कि उसमें दायित्त्वबोध पूर्णत: लुप्त हो गया है। आज देश में केजी से पीजी तक शिक्षकों की संख्या एक करोड़ तक पहुँचने को है। इन सभी का उद्देश्यपूर्ण उपयोग बिना जवाबदेही के संभव नहीं है। शिक्षकों की जवाबदेही तो सुनिश्चित होनी ही चाहिये, परन्तु यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि जिन विषम परिस्थितियों में शिक्षकों को कर्तव्य निभाना होता है, क्या वे कर्तव्यपरायण शिक्षक को प्रभावी रूप से दायित्व निभाने में बाधक तो नहीं होती है? इस पर विचार आवश्यक है। शिक्षा विस्तार की ललक में विद्यालय, महाविद्यालय ही

नहीं विश्वविद्यालय भी स्थापित कर दिये गये। परन्तु उनको आवश्यक संसाधन नहीं दिये गये आज भी देश में एक लाख से अधिक ऐसे स्कूल हैं, जहाँ केवल मात्र एक ही शिक्षक विद्यमान हैं, बड़ी संख्या में विद्यालय के पास भवन, ब्लेक बोर्ड, बैठने को फर्नीचर, खेल के मैदान, प्रयोगशालायें, पीने को पानी व शौचालय उपलब्ध नहीं हैं। शिक्षकों में भी नियमित रूप से चयनित स्थायी शिक्षकों के स्थान पर अस्थायी अनुबंधी व अंशकालिक नये व सेवानिवृत्त शिक्षकों से शिक्षण व्यवस्था संचालित हो रही है, ऐसे में शिक्षकों की जवाबदेही कैसे सुनिश्चित की जा सकती है। निजी शिक्षण संस्थाओं के विस्तार से समस्या सुधरी नहीं है, आज संपूर्ण शिक्षातंत्र जवाबदेही के अभाव, अपारदर्शी प्रशासन व भ्रष्टाचार में आकंठ डूबा हुआ है। ऐसे वातावरण में जवाबदेही जहाँ सुनिश्चित करना निश्चय ही एक कठिन कार्य है। बड़ी ही सुगमता से जवाबदेही को टाला जा सकता है फिर भी यदि शिक्षक को प्रभावी बनाना है, तो प्रत्येक स्तर पर जवाबदेही तो सुनिश्चित करनी ही होगी।

जवाबदेही किसी न किसी आधार (Basis) से संबंधित होती है और किसी व्यवस्था या व्यक्ति के प्रति हो सकती है। जवाबदेही सभी संबंधित पक्षों को ज्ञात होनी चाहिये कि किसकी जवाबदेही किसके प्रति किस सीमा तक होगी व जवाबदेही का स्वरूप अथवा दिशा क्या होगी। यदि जवाबदेही सुनिश्चित, सुस्पष्ट व व्यवस्थित होगी, तो यह शनै-शनै शिक्षकधर्म का रूप ग्रहण कर लेगी। शिक्षण व्यवस्था में पारदर्शी जवाबदेही की व्यवस्था कर शिक्षकधर्म का निर्माण हो सकता है।

शिक्षा में जवाबदेही निर्धारित करने के प्रयास पहले भी होते रहे हैं। कोठारी आयोग ने इस दिशा में अनेक सुझाव दिये राष्ट्रीय शिक्षानीति (1986) में जवाबदेही के लिये अनेक उपाय प्रस्तावित किये, परन्तु उनका क्रियान्वयन ठीक से नहीं हो पाया, अब नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्माण के दौर में है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रस्तावित रूप में जवाबदेही निर्धारित करने के उपाय सम्मिलित किये गये हैं परन्तु ये सभी बहुत सतही व अस्पष्ट हैं। शिक्षा में प्रत्येक स्तर पर जवाबदेही निर्धारित करने में अत्यन्त प्रभावशाली व शक्तिशाली वोकललॉबी (Vocal Lobuy) द्वारा प्रखर विरोध का सामना करना पड़ेगा। इसके लिये अनेक अल्पकालिक व दीर्घकालिक कठोर निर्णय करने होंगे। सुब्रह्मण्यम समिति ने बड़े स्पष्ट शब्दों में शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं जवाबदेही के सर्वथा अभाव तथा सुधारों को रोकने वाला शिक्षक संघों की व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। प्रस्तावित शिक्षा नीति के प्रारूप में कहा गया है कि जवाबदेही की समस्या का हल कठोर (Strong) राजनीतिक सहमति व इच्छाशक्ति द्वारा किया जायेगा यह एक अस्पष्ट उपाय है। इसमें यह स्पष्ट नहीं है कि यह कठोर राजनीतिक सहमति एवं इच्छाशक्ति कौन और कैसे बनायेगा इनको स्पष्ट किया जाना अपेक्षित है। शिक्षा अधिकार अधिनियम में जवाबदेही के अनेक प्रावधान सम्मिलित किये गये हैं, परन्तु वे भी प्रभावी नहीं हो पाये हैं। स्कूली शिक्षा के संबंध में राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रारूप में कहा गया है कि स्कूलों में शैक्षिक उपलब्धियों के लिये प्राचार्य जवाबदेह होगा व शिक्षक जवाबदेही के लिये कार्यक्रम प्राथमिकता से लिये जायेंगे। इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि कौन इन कार्यक्रमों को बनायेगा व इन्हें कैसे प्रभावी बनाया जायेगा। शिक्षा में अनुपस्थिति की व्यवस्था (Absenteeism) की समस्या का निवारण, प्रबंध समितियों को अधिकार संपन्न बनाने व अनुशासन बनाये रखने का अधिकार देने का प्रावधान किया जाना प्रस्तावित है। गैरहाजिर शिक्षकों की विशाल व दुरूह समस्या को सुलझाना क्या इतने भर से संभव होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रस्तावित प्रारूप में इनसे संबंधित सुस्पष्ट कार्यक्रम निर्धारित करना अपेक्षित है। उच्चशिक्षा में भी कोई सुखद स्थिति नहीं है। बड़ी संख्या में शैक्षणिक व अशैक्षणिक पद रिक्त हैं, शोध कार्य शोचनीय स्थिति में है। पूर्व प्रकाशित सामग्री का शोध में भरपूर उपयोग ज्ञान की नई दिशायें खोलने में समर्थ नहीं है। स्थायी विधि संगत रीति चयनित शिक्षकों का अभाव जवाबदेही निर्धारित करने में बड़ी बाधा है। इनके लिये भी कड़े उपाय अपेक्षित हैं। जवाबदेही के कठोर उपाय करने में साथ ही जिम्मेवारी निर्वाह हेतु आवश्यक वातावरण बनाने के लिये सरकार को शिक्षा के लिये प्राथमिकता से वित्तीय संसाधन जुटाने होंगे। चीन जो सत्तर के दशक में शिक्षा के क्षेत्र में काफी पीछे था, आज भारत से के.जी. से पी.जी. तक की शिक्षा में बहुत आगे निकल चुका है। यह भी एक तथ्य है कि भारत प्रजातांत्रिक देश है, जहाँ सभी कुछ कड़े वैधानिक उपायों से प्राप्त नहीं किया सकता हैं। प्रजातांत्रिक देश में बहुत कुछ वित्तीय अभिप्रेरणाओं (Financial Incentives) से प्राप्त किया जा सकता है। उत्तरदायित्व के कठोर अनुपालन को वित्तीय अभिप्रेरणा से प्राप्त करने का प्रयास किया जा सकता है। विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों को वित्तीय सहायता उनके परिणाम व उपलब्धियों से जोड़कर जवाबदेही को बढ़ाया जा सकता है। वित्तीय अभिप्रेरणाओं का विचार शिक्षकों व अन्य कर्मचारियों तक भी किया जा सकता है। भ्रष्टाचार व राजनीतिक हस्तक्षेप से पूर्णतः मुक्त तथा पारदर्शी शैक्षिक व प्रशाकीय तंत्र जवाबदेह शिक्षा में लिये अति आवश्यक है।❑

शैक्षिक जवाबदेही सभी का उत्तरदायित्व

भारतीय जीवन परम्परा में उत्तरदायित्व की भावना की झलक जीवन में हर स्तर पर दृष्टिगोचर होती है। इसी कारण व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के मध्य भावनात्मक संबंध बना रहता है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में जवाबदेही का तत्व पश्चिम से उधार लिया व आयातित विचार लगता है क्योंकि वैश्विक परिदृश्य में, व्यवसाय (business) का प्रभाव शिक्षा क्षेत्र में देखा जा सकता है। इसके कारण समग्र सोच में परिवर्तन आया है। कहीं जवाबदेही की आड़ में विश्वविद्यालययों की स्वायत्तता पर तो प्रहार नहीं है? प्रत्यानयन बोर्ड (accreditation board) की सोच भी दूसरा पश्चिम का उधार लिया विचार है क्योंकि हमारे यहाँ तो स्वयं संचालित व नियंत्रित कार्य-बोध का आभास है। फिर भी वर्तमान परिदृश्य में शिक्षकों को चुनौतियों का सामना करते हुए सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करना होगा, तभी शिक्षा नीति में वर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति होगी।

❑ प्रो. मधुर मोहन रंगा

किसी भी व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने में, सुशासन (good governance) की आवश्यकता होती है। यह एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है व प्रत्येक व्यवस्था में विभिन्न प्रकार से लागू होती है। परन्तु सभी व्यवस्थाओं को नियमित, विधिक व योजनाबद्ध संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है, जवाबदेही की। यही वह आधारभूत अवधारणा है जिसके आधार पर कार्यों, योजनाओं, नीतियों, परियोजनाओं, संकल्पनाओं, गतिविधियों की उत्कृष्टता तक पहुँचने व उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है। इसी के द्वारा निष्कर्ष व आकलन किया जा सकता है। यह शिक्षा व्यवस्था में भी लागू होता है। सामान्यतया जब हम सार्वजनिक चर्चा में भागीदार होते हैं, तब अधिकांश व्यक्ति जवाबदेही पर सिर्फ चर्चा करते हैं, यहीं तक उनका विचार विमर्श समाप्त हो जाता है। परन्तु आश्चर्य तब होता है, जब समाज में अपसंस्कृति की ओर अग्रसरित होने वाले परिवर्तनों को भी शिक्षकों की जवाबदेही से जोड़ दिया जाता है। यद्यपि जवाबदेही शिक्षण व्यवस्था का स्वाभाविक अवयव है, शिक्षक गुणवत्ता शिक्षा प्रदाता के रूप में इसे स्वीकार भी करता है। जवाबदेही पर गंभीर चिंतन करने से पूर्व स्कूल शिक्षा व्यवस्था पर निम्न आँकड़ों के आधार पर मनन करना होगा। ''देश के करीब 8 प्रतिशत शासकीय स्कूल एक शिक्षक के भरोसे है, देश के बड़े राज्यों में प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में शिक्षकों की कमी है। अन्य देशों की तुलना में भारत में शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात व ग्रॉस-एनरोलमेंट अनुपात भी कम है।'' हाल ही में संसद में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा पेश की गई एक रिपोर्ट में कहा गया है कि देश में एक लाख, 5 हजार, 630 सरकारी सेकेंडरी व प्राथमिक संस्थाओं में सिर्फ एक शिक्षक है। मध्यप्रदेश में 17 हजार, 874 स्कूलों, उत्तर प्रदेश में 17 हजार, 602 सरकारी स्कूलों, राजस्थान में 13 हजार, 575, आंध्रप्रदेश में 9 हजार 540, बिहार में 3 हजार 708 स्कूलों में एक शिक्षक है। उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, गुजरात में यह आँकड़ा क्रमशः 1771,1119, 1430, 1360,888 व 778 है। जबकि शिक्षा के अधिकार के अंतर्गत प्रत्येक 30 से 35 छात्रों पर एक शिक्षक होना चाहिए। मानव संसाधन मंत्रालय की रिपोर्ट के आधार पर देश भर में सरकारी स्कूलों में प्राइमरी शिक्षकों के 33.08 लाख स्वीकृत पदों में से 5.5 लाख पद खाली हैं। उच्चशिक्षा में भी

विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में कई वर्षों से पद रिक्त हैं। साथ ही आधारभूत सुविधाओं का अभाव है। परन्तु हमारे शिक्षा नीति निर्धारकों ने केवल शिक्षकों की जवाबदेही पर विचार मंथन किया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (संशोधित 1992) के भाग 1, 1968 की शिक्षा नीति व इसके बाद (The 1968 Education Policy and ofter) के भाग 1, परिचय के बिन्दु 1.4 में नैतिक मूल्यों का सम्वर्द्धन-शिक्षा व व्यक्तियों के जीवन के बीच निकट के संबंध स्थापित करना, सामाजिक मूल्यों का समावेश, सार्वभौमिक व अनादि मूल्यों को प्रोत्साहन देना है। अप्रत्यक्ष रूप से ये सभी अपेक्षाएँ शिक्षकों के उत्तरदायित्व से जुड़ी हुई हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 के भाग-5 पर ''विभिन्न स्तरों पर शिक्षा के पुनर्गठन (Reorganisation of Education at different Stages)'' के बिन्दु संख्या 5.28 में, उच्च शिक्षा में स्वायत्तता, स्वतंत्रता के साथ जवाबदेही भी सुनिश्चित की जानी चाहिए, चयनित आधार पर विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में स्वायत्त विभाग होने चाहिए। भाग-7 ''व्यवस्था का क्रियान्वयन (Making the system work) के बिन्दु 7.3 में (a) अधिक उत्तरदायित्व व जवाबदेही के साथ शिक्षकों से शिक्षा व्यवस्था को सुचारु रूप से सम्पादित करने हेतु वार्ता/समझौता करना चाहिए, लिखा है। भाग 9 'शिक्षक' (The Teacher) के बिन्दु 9.1,9.2,9.3 में लिखा है कि शिक्षक का स्तर समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने को प्रतिबिम्बित करता है क्योंकि उनकी सामाजिक व व्यावसायिक (professional) जिम्मेदारियाँ होती हैं। व्यावसायिक सत्य-निष्ठा (professional integrity) के लिए व्यावसायिक आचरण शास्त्र (ethics) होना चाहिए। भाग-10, ''शिक्षा का प्रबन्धन'' (Management of Education) के बिन्दु 10.1, में ''शिक्षा की कार्ययोजना व प्रबन्धन'' का वर्णन करते हुए लिखा है कि जवाबदेही के सिद्धान्त तय किये जाने चाहिए ताकि शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

इसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2016 में गुणवत्ता के लिए अभिशासन में सुधार, गुणवत्ता संस्थाओं की रैंकिंग एवं प्रत्यानयन, कौशल विकास व अन्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम शिक्षक तैयार करना है। उत्तम शिक्षक ही अनुसंधान और नवाचार को बढ़ावा देने के लिए ज्ञान को अर्जित करता है। अत:शिक्षा के समग्र उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जो अपेक्षाएँ की गई हैं वे ही एक प्रकार से जवाबदेही तय करती है। वर्तमान मानव संसाधन विकास मंत्री श्री प्रकाश जावडेकर ने फर्गुसन महाविद्यालय (Ferguson) पूणे के एक कार्यक्रम में कहा था कि शिक्षकों की जवाबदेही व उत्तरदायित्व शिक्षा व्यवस्था में तय होना चाहिए। उन्होंने कहा कि शिक्षकों को विद्यार्थियों को प्रेरित करना चाहिए ताकि वह अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सके। उन्हें जीवन कौशल व तकनीकी कौशल की शिक्षा देनी चाहिए। अच्छे कार्यों के लिए शिक्षक सम्मानित किये जायेंगे क्योंकि शिक्षक ही शिक्षा व्यवस्था के रूपान्तरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार उन्होंने एक उत्तरदायित्व के निर्वहन का आह्वान किया। प्रश्न उठता है कि किस प्रकार शिक्षक-विद्यार्थी के असंतोषजनक परिणाम के लिए जवाबदेह है? शिक्षण के साथ विभिन्न प्रकार के दबाव भी जुड़े रहते हैं। यदि उच्च तकनीकी युक्त शिक्षण है तो विद्यार्थियों के परीक्षा परिणाम अच्छे होंगे। यदि परिणामों में शिक्षण की कौशलता प्रतिबिम्बित नहीं होती है तो उस अवस्था में शिक्षक कैसे जिम्मेदार है? टेस्ट-स्कोर में विद्यार्थी की वचनबद्धता, प्रेरणा, वातावरण व उसकी लगन व क्षमता सहायक है। विद्यार्थी समुदाय की अधिगम क्षमता यदि कम है तो किस प्रकार शिक्षक जिम्मेदार है? ब्लिम्पो व इवान (Blimpo and Evan) 2011 व प्रधान (Pradhan et al, 2011) व अन्य 2011 के अनुसार भारत व अन्य देशों में शिक्षक, यदि स्थानीय समुदाय (local community) के प्रति जवाबदेह है, उस अवस्था में विद्यार्थी के अधिगम पर कम प्रभाव पड़ता है। क्लेन (Klein, 2000) के शोध बताते हैं कि

शिक्षक जवाबदेही के कारण विद्यार्थी का टेस्ट-स्कोर (Test Scores) बढ़ा है (Texas Assessment of Academic Skills, TAAS) फिगलिओं व रोसे (Figlio & Rouse 2006) व जेकाब (Jacob,2005) के शोध पत्र बताते हैं कि टेस्ट-स्कोर विद्यार्थियों की विशेष रुचि (High-stakes) व अरुचि या कम रुचि (Low-skates) पर निर्भर करता है। (National Assessment of Educational Progress, NAEP) अत: शिक्षण संस्थाओं का प्रबन्धन, विकास समितियों, आधारभूत सुविधाओं आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान अधिगम पर होता है, विद्यार्थियों के शिक्षण व्यवस्था में शिक्षकों की जवाबदेही को विद्यार्थी के मूल्यांकन से जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए। भारत में शिक्षा के अधिकार (2009) के अनुसार- अधिगम को सुधारने के लिए शिक्षकों को उत्तरदायित्व निभाना चाहिए। इसके लिए सतत् मूल्यांकन आवश्यक है। 'असेर' (Annual Status of Education Report,ASER) के अनुसार अधिगम के स्तर में कमी का कारण स्थानीय स्तर पर सही सूचनाओं का समय पर नहीं पहुँचना है।

विश्व समुदाय का ध्यान विकासशील राष्ट्रों के उन विद्यार्थियों की ओर आकर्षित हुआ जो अध्ययन की तरफ कम रुचि रखते हैं, इसी कारण शिक्षा के क्षेत्र में सहभागिता व सामाजिक जिम्मेदारी (Social accountability) की अवधारणा को जन्म दिया। इसके अन्तर्गत जवाबदेही-संबंध (accoutability relationship), नागरिक (citizen), नीति निर्धारक (policy-makers) व सेवाएँ-प्रदाता (service providers) के मध्य, शिक्षा संचालन पद्धति को गति प्रदान करने व सुदृढ़ बनाने के लिए होती है क्योंकि सहस्त्राब्दी विकास उद्देश्यों (MDGs) को 2015 तक पूरा करना व इसके पश्चात् 2015-2030 तक नवीन दीर्घकालिक (Sustainable Development Goals, SDGs) विकास उद्देश्यों को पूरा करने का प्रस्ताव पारित किया गया। उपरोक्त उद्देश्य शिक्षा से सम्बंधित हैं। विश्व विकास रिपोर्ट 2004 (World Development Report, 2004) ने शिक्षा में सामाजिक जिम्मेदारी को निभाने के लिए शिक्षा व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण (decentralization) का सुझाव दिया। सामाजिक जवाबदेही की प्रक्रिया के अंतर्गत जवाबदेही बढ़ाना, समावेशिता (Inclusiveness), पारदर्शिता (Trasparency), उत्तरदायित्व (Responsiveness) व प्रभावी विकास (Effective Development) आदि विषय आते हैं। (Social Accountibility Source Book) यद्यपि सामाजिक जवाबदेही उद्देश्य शैशव काल में है, परन्तु इसका दीर्घकालिक प्रभाव है। नीति निर्धारण व कार्ययोजना में शिक्षा सेवा प्रदाता (service delivery) की सहभागिता विभिन्न वार्तालापों में होनी चाहिए। सामाजिक जिम्मेदारी के निम्न तीन स्तर होते हैं।

(अ) **नीति स्तर (Policy level)** - जैसे शिक्षा सभी के लिए, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में पहुँच, जन नीति जो इसे सामर्थ्य बनाये, नागरिक व सेवाएँ प्रदाता के मध्य वार्ता, क्या नीति के द्वारा उद्देश्यों की पूर्ति होती है?

(ब) **विशेष उद्देश्य के लिए तैयार योजना स्तर (Strategy level)** - क्या नीति निर्धारित कार्यवाही के अनुसार बजट प्रावधान किया गया? क्या शिक्षा के लिए प्राप्त सार्वजनिक राशि का उचित वितरण किया गया?

(स) **संचालन पद्धति स्तर (Operational level)** - क्या शिक्षा सेवाएँ प्रदाता के द्वारा शिक्षा की पहुँच, उपलब्धता, प्रभाविता स्तर परिणाम व उत्कृष्टता का नियमित परीक्षण किया क्या? नागरिक समाज व निकायों (Self-regulatory Bodies) द्वारा शिक्षा निष्पादन (performance) का नियमन किया गया? सामाजिक जवाबदेही में निष्पादन व तंत्र सम्बंधी सूचनाएँ, जैसे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, पहुँच, फंड का उपयोग, जवाबदेही चुनौतियों का मूल्यांकन, प्रचलित सामाजिक उत्तरदायित्व का विश्लेषण, जन-समर्थन का सहयोग आदि विभिन्न विषयों को सम्मिलित किया गया है। कुल मिलाकर इसके केन्द्र में शिक्षक ही नहीं है, बल्कि सभी इसके सहायक अवयव हैं।

भारतीय जीवन परम्परा में उत्तरदायित्व की भावना की झलक जीवन में हर स्तर पर दृष्टिगोचर होती है। इसी कारण व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के मध्य भावनात्मक संबंध बना रहता है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में जवाबदेही का तत्व पश्चिम से उधार लिया व आयातित विचार लगता है क्योंकि वैश्विक परिदृश्य में, व्यवसाय (business) का प्रभाव शिक्षा क्षेत्र में देखा जा सकता है। इसके कारण समग्र सोच में परिवर्तन आया है। कहीं जवाबदेही की आड़ में विश्वविद्यालययों की स्वायत्तता पर तो प्रहार नहीं है? प्रत्यानयन बोर्ड (accreditation board) की सोच भी दूसरा पश्चिम का उधार लिया विचार है क्योंकि हमारे यहाँ तो स्वयं संचालित व नियंत्रित कार्य-बोध का आभास है। फिर भी वर्तमान परिदृश्य में शिक्षकों को चुनौतियों का सामना करते हुए सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करना होगा, तभी शिक्षा नीति में वर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति होगी।❑

विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विज्ञान विभाग,
सरगुजा वि.वि., अम्बिकापुर (छत्तीसगढ़)

हमारी सबसे बड़ी कमी यह है कि हम शिक्षा की बदहाली के लिए शिक्षातंत्र को जिम्मेदार मानते रहे हैं। शिक्षकों से जवाबदेह होने की अपेक्षा करते रहे हैं। शिक्षकों को जवाबदेह होना भी चाहिए मगर शिक्षा व्यवस्था की असफलता के लिए शिक्षकों को जवाबदेह मानने से समस्या का समाधान नहीं होगा। कुछ समय के लिए मान लेते हैं कि शत प्रतिशत शिक्षक जवाबदेह हो जाते हैं। 1986 की शिक्षा-नीति के अपेक्षानुसार सभी शिक्षक पढ़ाने लगते हैं और सभी विद्यार्थी पढ़ने लगते हैं। बोर्ड परीक्षा परिणाम 100 प्रतिशत प्रथम श्रेणी रहने लगता है। प्रश्न यह है कि क्या इससे हमारी समस्याएँ हल हो जायेंगी? अनुभव तो बताता है कि समस्या बढ़ेगी। आज पाँच रिक्त पदों के लिए 5000 तक लोग पहुँचते हैं। भर्ती के समय कानून व्यवस्था बनाए रखना भी मुश्किल हो जाता है। सभी के प्रथम श्रेणी में पास होने पर तो भर्ती के समय पहुँचने वालों की संख्या लाखों में होगी।

जवाबदेह हो शिक्षा प्रशासन

❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

भारत में शिक्षा की बदहाली के लिए किसी एक कारण को जिम्मेदार ठहराया जाये तो मेरी दृष्टि में वह कारण शिक्षा से जुड़े विभिन्न घटकों में जवाबदेही का अभाव है। जवाबदारी के अभाव का भी सम-वितरण नहीं है, जितना बड़ा पद जवाबदारी उतनी ही कम रहती है। परीक्षा परिणाम कम रहने पर शिक्षकों को दण्डित किया जाता रहा है, सम्पूर्ण शिक्षा तंत्र के असफल रहने के बावजूद किसी नीति निर्धारक को जवाबदेह कभी नहीं ठहराया गया है।

कोठारी आयोग के बाद शिक्षा-क्षेत्र की कमियों को जानने का प्रयास 1980 के दशक में किया गया था। देश की शिक्षा व्यवस्था का विस्तृत अध्ययन कर एक रिपोर्ट भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षामंत्री श्री कृष्णचन्द्र पन्त को प्रस्तुत की थी। बाद में 'शिक्षा की चुनौती' शीर्षक से प्रकाशित देश के सामने प्रस्तुत उस रिपोर्ट में कहा गया है कि शिक्षा के विषय में विचार करने से पूर्व हमें शिक्षा व्यवस्था की सीमाओं को ध्यान में रखना चाहिए। सीमाओं का निर्धारण नहीं होने पर उन कमियों के लिए भी शिक्षा व्यवस्था को दोषी ठहरा दिया जाता है जो शिक्षा व्यवस्था के वश में नहीं होती। रिपोर्ट में शिक्षा को एक बड़ी चुनौती बताते हुए स्पष्ट किया गया कि शिक्षा व्यवस्था बिना आधार के नहीं चल सकती। क्षेत्र की परिस्थितियों का शिक्षा व्यवस्था पर बहुत प्रभाव पड़ता है। शिक्षा के लिए उचित परिस्थितियों का निर्माण करने की जिम्मेदारी नीति निर्धारकों व प्रशासकों की होती है। जब तक नीति-निर्माता शिक्षा के विकास हेतु आवश्यक निवेश नहीं करते तब तक शिक्षा व्यवस्था का कायापलट नहीं हो सकता। इस रिपोर्ट को आधार मानकर बनाई गई 1986 की शिक्षा नीति में बड़े-बड़े वादे किए गए मगर वे वादे हवाई किले सिद्ध हुए। प्राथमिक स्तर पर कुछ भौतिक संसाधन उपलब्ध कराने के अतिरिक्त अन्य जवाबदेही शिक्षा-नीति के निर्धारकों व प्रशासकों ने नहीं निभाई। परिणाम हमारे सामने हैं। स्थितियाँ सुधरने के बजाय बिगड़ी ही है।

हमारी सबसे बड़ी कमी यह है कि हम शिक्षा की बदहाली के लिए शिक्षातंत्र को जिम्मेदार

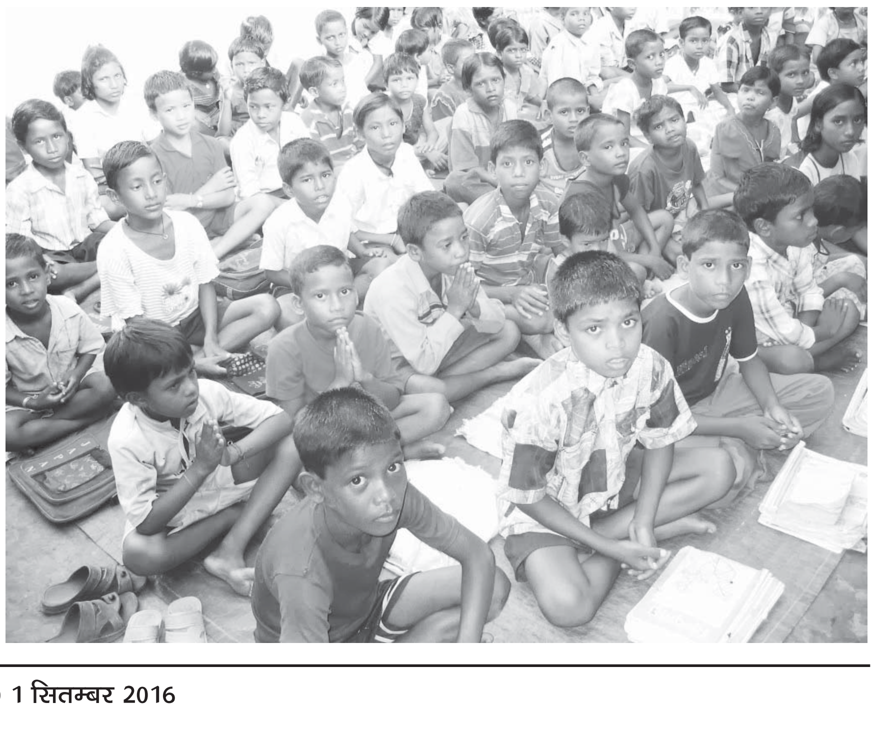

मानते रहे हैं। शिक्षकों से जवाबदेह होने की अपेक्षा करते रहे हैं। शिक्षकों को जवाबदेह होना भी चाहिए मगर शिक्षा व्यवस्था की असफलता के लिए शिक्षकों को जवाबदेह मानने से समस्या का समाधान नहीं होगा। कुछ समय के लिए मान लेते हैं कि शत प्रतिशत शिक्षक जवाबदेह हो जाते हैं। 1986 की शिक्षा-नीति के अपेक्षानुसार सभी शिक्षक पढ़ाने लगते हैं और सभी विद्यार्थी पढ़ने लगते हैं। बोर्ड परीक्षा परिणाम 100 प्रतिशत प्रथम श्रेणी रहने लगता है। प्रश्न यह है कि क्या इससे हमारी समस्याएँ हल हो जायेंगी? अनुभव तो बताता है कि समस्या बढ़ेगी। आज पाँच रिक्त पदों के लिए 5000 तक लोग पहुँचते हैं। भर्ती के समय कानून व्यवस्था बनाए रखना भी मुश्किल हो जाता है। सभी के प्रथम श्रेणी में पास होने पर तो भर्ती के समय पहुँचने वालों की संख्या लाखों में होगी।

सबसे बड़ी कमजोरी

हमारी शिक्षा व्यवस्था की सबसे बड़ी कमजोरी शिक्षा के मैकालयी चरित्र को नहीं बदल पाना है। देश के आजाद होने के बाद मैकालयी चरित्र दृढ़ होता गया है। जिस तेजी से अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों की बढ़ोतरी हो रही है, उससे लगता है कि निकट भविष्य में हम भारत में भारतीय भाषाओं के विद्यालय ढूँढ़ते रह जाएँगे। इसका अर्थ यह नहीं है कि देश में शिक्षा का भारतीयकरण करने के विषय में सोचा नहीं गया है। देश आजाद होने के तुरन्त बाद से कई बार ऐसा सोचा गया मगर जवाबदेही की कमी के कारण हुआ कुछ भी नहीं। शिक्षा नीति 1986 से उदाहरण लेते हैं। 1968 की भाषानीति को जारी रखते हुए क्षेत्रीय भाषाओं को विश्वविद्यालय स्तर तक अध्ययन का माध्यम बनाने तथा हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित करने का संकल्प 1986 में फिर दोहराया गया था। अंग्रेजी व अन्य भाषाओं के अध्ययन की सुविधा उपलब्ध कराने की बात थी। सभी को समान शिक्षा सुविधा उपलब्ध कराने की बात भी कही गई। इन संकल्पों के प्रति जवाबदेही नहीं निभाने का ही परिणाम है कि अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ता ही गया है। जब शिक्षा की नीति निर्धारित करने वाले लोग स्वयं के बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से पढ़ावे और जनता से कहे कि क्षेत्रीय भाषाओं में अध्ययन करो तो कौन मूर्ख बनेगा। क्षेत्रीय भाषाओं व हिन्दी को रोजगार की भाषा नहीं बनने दिया गया तो लोग उसमें अध्ययन क्यों करेंगे। आज क्षेत्रीय भाषाओं के स्कूल गरीबों के स्कूल बनकर रह गए हैं तो यह किसकी जवाबदेही है? इस पर कोई नहीं बोलेगा क्योंकि अधिकारी हो या राजनेता सभी के बच्चे मँहगे स्कूलों में पढ़ रहे हैं। विश्वविद्यालयी शिक्षा के लिए विदेश जा रहे हैं। शिक्षानीति 2016 के प्रारूप को देख कर तो लगता है अंग्रेजी के वर्चस्व को स्वीकार कर इस पर चुप रहना ही बेहतर समझा जा रहा है।

अभी ओलम्पिक में भारतीय खिलाड़ियों द्वारा मात्र दो पदक जीत पाने की बात ने देशवासियों को बहुत विचलित किया है मगर इसके लिए कौन जवाबदेह है इस प्रश्न पर कोई चर्चा नहीं हो रही है। जवाबदेही तय किए बिना 2020 में टोकियो ओलम्पिक में भारत की स्थिति में सुधार की कल्पना मृग मरीचिका ही साबित होगी। 1986 की शिक्षा नीति में खेलों की स्थिति में सुधारने के बड़े-बड़े वादे किए गए थे। शहरी क्षेत्रों में उपलब्ध खुली जमीन को कानून बना कर खेल मैदानों के लिए सुरक्षित किया जाना था। खेल के सामान के साथ प्रशिक्षक उपलब्ध कराए जाने थे। भारतीय मूल के खेलों को प्रोत्साहित किया जाना था। यदि 1986 की नीति में हर लक्ष्य के लिए जवाबदेही के सिद्धान्त को अपनाने के साथ जवाबदेह का पद भी इंगित किया होता तो देश को दो-तीन महिला खिलाड़ियों की उपलब्धि पर ही सन्तोष नहीं करना होता।

शिक्षा का संचालन शिक्षा के मर्मज्ञों द्वारा ही हो सकता है मगर देश की शिक्षा व्यवस्था को समान्य प्रशासन के जिम्मे कर दिया गया है। अधिकांश प्रशासनिक अधिकारी शिक्षा विभाग में आना नहीं चाहते। लगा भी दिया तो वे औपचारिकता निभाते समय निकालते हैं। ऐसे में उनके जवाबदेह होने की बात सोचना ही गलत है।

शिक्षा प्रशासन को जवाबदेह बनाने के उद्देश्य से 1986 की शिक्षानीति में अखिल भारतीय शिक्षा सेवा की स्थापना करने का संकल्प प्रकट किया गया था। योग्य व स्थाई शिक्षा प्रशासक उपलब्ध कराने की भावना प्रकट की गई थी। यदि ऐसा होता तो शिक्षा में जवाबदेही का माहौल बनता। जवाबदेही के अभाव में तात्कालिक लाभ के निर्णय ले लिए जाते हैं। बढ़ते राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण तात्कालिक लाभ के निर्णय बढ़ते जा रहे हैं। देश में नागरिक चेतना इतनी नहीं कि वह शिक्षाहित में कोई आवाज बुलन्द कर सके। ऐसे में शब्दों में हेरफेर कर नई शिक्षानीति बनाने का कोई लाभ नहीं होने वाला है। आवश्यकता है शिक्षा का स्वतन्त्र नियामक बना कर, राजनीति निरपेक्ष, देशहित में काम करने वाला, जवाबदेह शिक्षा प्रशासन तैयार करने की है। शिक्षामंत्री व उच्च अधिकारी जवाबदेह होंगे तो भाव नीचे तक स्वत: ही चला जाएगा। शिक्षा को लेकर आज सम्पूर्ण विश्व में बैचेनी का माहौल है। सभी देश अपनी-अपनी स्थिति को देख कर बदलाव के प्रयास कर रहे हैं। हमें भी अपने देश की स्थिति को देख कर वस्तुपरक निर्णय लेने चाहिए। ❑

(बाल एवं विज्ञान विषयक लेखक)

सरकारी शिक्षण तन्त्र का उद्देश्य सामाजिक सहायता हेतु समाज को सस्ती व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देना होता है। शिक्षा का यह क्षेत्र पूर्णतः लाभ रहित होता है, अतः शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के सामने लाभ का उद्देश्य गौण हो जाता है। प्रशासन द्वारा श्रेष्ठतम शिक्षा उपलब्ध करवाना और उसका रोजगार तथा कौशल विकास के रूप में पर्याप्त निर्गत (Out-put) ही देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करता है। कौशल क्षमताओं के साथ वैश्विक प्रतिस्पर्धा में स्थान बनाने के लिये बौद्धिक क्षमताओं का विकास कर आत्मनिर्भरता बढ़ाने तथा व्यावसायिक, तकनीकी व आधुनिक शिक्षा प्रदान कर सामान्य जन की उपार्जन क्षमता में वृद्धि करने की प्रशासन की जवाबदेही है।

शिक्षा में तय हो प्रशासन की जवाबदेही

❑ डॉ. रेखा भट्ट

वैदिक कालीन में भारत में शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। विभिन्न भू-प्रदेशों में राज्य व्यवस्था थी। समाज में शिक्षा के प्रसार के लिए शासक या राजा द्वारा ही गुरुकुलों को भूमि, भवन, धन आदि दान अथवा पुरस्कार के रूप में प्रदान कर वित्तीय सहायता प्रदान की जाती थी। इसके अतिरिक्त गुरुकुल के संचालन या प्रबंधन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही होता था। शिक्षा के प्रति गुरुकुल में कुल प्रमुख एवं शिक्षक ही पूर्ण रूप से जवाबदेह होते थे। सामाजिक हितों को ध्यान में रखते हुए, विद्यार्थियों के भविष्य के लिए शिक्षा पद्धति एवं शिक्षा नीति केवल शिक्षकों (गुरु) द्वारा ही निर्धारित की जाती थी। राज्य द्वारा शिक्षा, न्याय, रक्षा आदि सभी क्षेत्रों में सुस्पष्ट एवं निष्पक्ष व्यवस्था समाज के प्राण समान होती है। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने दक्ष एवं गतिशील प्रशासन हेतु राजा के कर्तव्यों को इस श्लोक में उद्धृत किया है-

''प्रज्ञा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां हिते हितम्।
नात्मेप्रियं सुखं राज्ञः प्रजानां सुखे सुखम्''।।

अर्थात- प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजा के हित में राजा का हित है। राजा के लिये प्रजा के सुख से भिन्न अपना सुख नहीं है, राजा का कर्त्तव्य जनहित के कार्यो का सम्पादन है। किन्तु वह निरंकुश नही होना चाहिए।

मध्यकाल में भारत में शिक्षा सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं, मंदिरों एवं जनसहयोग से संचालित होती रही एवं सामाजिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम थी परन्तु ब्रिटिश काल में केवल मिशनरी द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं को राजकीय आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी। धीरे-धीरे यह शिक्षण संस्थाओं की अनुदान प्रणाली के रूप में बदल दी गई। आर्थिक सहायता या अनुदान प्रणाली कुछ नियमों व शर्तों के पालन के साथ प्रभावी होती है। वित्तीय सहायता एवं संसाधनों का दुरुपयोग रोकना एवं उनका सीमित व संस्थान के विकास हेतु उपयोग करवाना, प्रशासन का उत्तरदायित्व होता है।

आर्थिक आधार पर टिकी वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने प्रशासन द्वारा प्राप्त वित्तीय अनुदान से निजी व गैर सरकारी शिक्षण संस्थाओं को अत्यधिक प्रोत्साहन व संरक्षण मिला है अनगिनत निजी संस्थाओं में वृद्धि हुई है। सामाजिक विकास का केवल अनुदान से ही सरोकार नही होता, शिक्षा क्षेत्र में सेवाएँ प्रदान करना इसका महत्त्वपूर्ण पक्ष होता है।

निजीकरण में विशेषज्ञों, विज्ञापनों तथा प्रचार हेतु संसाधन ऐसे निजी पेशेवरों के हाथों में होते हैं, जिनकी शिक्षा के प्रति कोई जवाबदेही नही होती है, उनकी क्षमताएँ सीमित होने के कारण कार्यक्षमता व प्रबन्धन प्रभावित होता है। निजी संस्थान, व्यापारिक प्रतिस्पर्धा एवं अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की माँगों से निर्देशित होते हैं, तथा पूर्णत: निजी लाभ व अधिकतम शुल्क प्राप्ति के लिये प्रतिबद्ध होते हैं।

सरकारी शिक्षण तन्त्र का उद्देश्य सामाजिक सहायता हेतु समाज को सस्ती व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देना होता है। शिक्षा का यह क्षेत्र पूर्णत: लाभ रहित होता है, अत: शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के सामने लाभ का उद्देश्य गौण हो जाता है। प्रशासन द्वारा श्रेष्ठतम शिक्षा उपलब्ध करवाना और उसका रोजगार तथा कौशल विकास के रूप में पर्याप्त निर्गत (Output) ही देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करता है। कौशल क्षमताओं के साथ वैश्विक प्रतिस्पर्धा में स्थान बनाने के लिये बौद्धिक क्षमताओं का विकास कर आत्मनिर्भरता बढ़ाने तथा व्यावसायिक, तकनीकी व आधुनिक शिक्षा प्रदान कर सामान्य जन की उपार्जन क्षमता में वृद्धि करने की प्रशासन की जवाबदेही है।

आजादी के 70 वर्षों बाद भी शिक्षा क्षेत्र प्रशासन द्वारा उपेक्षित किया जाता रहा है। इसी कारण वांछित शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो सकी है। गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा के लिये नीति निर्धारकों व प्रबंधकों के शिक्षित होने का कोई मापदण्ड नहीं है। शिक्षा आज मूलाधिकार है और एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीयकृत उपक्रम है, जिस पर देश की अर्थव्यवस्था आश्रित है। संसाधनों की विस्तृत उपलब्धता सरल विनिमय, राजनीतिक अधिकार व नागरिक स्वतंत्रता सार्वजनिक उपक्रमों की दक्षता बढ़ाते हैं किन्तु पारदर्शिता व निष्ठा का अभाव कार्य प्रदर्शन को क्षीण बना देते हैं। सार्वजनिक सेवाओं के प्रति प्रतिबद्धता तथा व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा की कमी शिक्षा के प्रति प्रशासन की जवाबदेही पर प्रश्न चिन्ह (?) लगाते है।

प्रशासन द्वारा नए विद्यालय महाविद्यालय खोले जाने, पाठ्यक्रमों में नवीनतम परिवर्तन करवाये जाने और शिक्षण प्रशिक्षण की व्यवस्थाएँ उपलब्ध करवाने के सार्थक प्रयास करने होंगे। इन परियोजनाओं के क्रियान्वयन एवं इनके परिणामों के आकलन की प्रणाली सुनिश्चित करनी होगी। आज शिक्षा पद्धति को व्यावहारिक बनाने की आवश्यकता है। 2012 के सर्वेक्षण के अनुसार वैश्विक स्तर पर भारत का विज्ञान में वैश्विक आउटपुट मात्र 3.6 प्रतिशत रहा जबकि चीन का वैश्विक आउटपुट 14 प्रतिशत था। प्रशासन द्वारा शोध व अनुसंधान में निवेश को बढ़ाये जाने, उन्नत तकनीक के सहयोग से विज्ञान व प्रौद्योगिकी को शिक्षा क्षेत्र में बढ़ावा मिलेगा। वर्तमान परिस्थितियों में शिक्षा क्षेत्र अर्थ व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाला क्षेत्र है। शिक्षा प्रशासन द्वारा व्यापक एवं विश्वसनीय कार्य प्रणाली से शिक्षा सेवाओं को लाभान्वित किया जा सकता है। सुनियोजित नवाचार से समाहित पाठ्यक्रम एवं बुनियादी ढाँचा इसके सहयोगी अवयव है। प्रशासन द्वारा बेहतर शिक्षा व्यवस्था के लिये विद्यार्थियों का नामांकन बढ़ाना, पोषाहार, छात्रवृत्तियाँ, सभी के लिये 'सर्व शिक्षा' जैसे अभियान साक्षरता का प्रतिशत तो बढ़ाते हैं किन्तु शिक्षा के नियत लक्ष्यों को प्राप्त नहीं करते है। विद्यार्थियों को शिक्षा व्यवस्था का समुचित लाभ तभी मिलेगा जब प्रशासन द्वारा विद्यार्थियों को शैक्षणिक व सहशैक्षणिक गतिविधियों से जोड़ने एवं उनकी उपस्थिति को सुनिश्चित करने के सफल प्रयास होंगे।

औद्योगिक क्षेत्र की तरह शिक्षा का क्षेत्र पूर्ण रूप से संसाधनों पर आश्रित नहीं है। प्रतिनिधि के रूप में जनसामान्य को श्रेष्ठ शिक्षा उपलब्ध कराने के लिये योग्य एवं स्तरीय शिक्षकों की नियुक्ति प्रशासन का दायित्व है। शिक्षक ही विद्यार्थी को सार्थकता, सत्यता व प्रमाणिकता के साथ दृष्टिकोण विकसित करते हुए है उसके जीवन को सही दिशा प्रदान करते हैं।

शिक्षक प्रशासन के महत्त्वपूर्ण मानव संसाधन के रूप में कार्य करता है। आर्थिक व सामाजिक लाभ के लिये प्रशासन ही शिक्षक को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के प्रति जवाबदेह बनाता है। शिक्षण एक सजीव प्रक्रिया है जिसमें शिक्षक जानकारियों के व्यावहारिक रूपान्तरण में अपने अनुभवों का उपयोग करता है तथा ज्ञान का सृजन करता है। वह ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम होता है। आर्थिक सुधारों व सामाजिक परिवर्तनों को देखते हुए शिक्षा की आवश्यकता वृहत्तर रूप से बढ़ी है। इसके साथ ही विद्यार्थी की महत्त्वाकाँक्षायें भी बढ़ी हैं, परिणामस्वरूप उत्पन्न प्रतिस्पर्धा से विद्यार्थी का अनेक चुनौतियों से सामना होता है। अत: गत वर्षों से चले आ रहे तय पाठ्यक्रम को पूर्ण करवाने तथा मूल्यांकन की निर्धारित परीक्षा प्रक्रिया करवाने के साथ विद्यार्थी के शैक्षणिक प्रदर्शन में शिक्षक द्वारा सुधार का प्रयास उसकी क्षमताओं को बढ़ायेगा। शिक्षण के साथ जुड़ कर विद्यार्थी की अधिग्रहण क्षमता बढ़ेगी तथा वह स्वत: प्रसंस्करण की प्रक्रिया के योग्य बनेगा।

शिक्षा तंत्र देश के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता है अत: शिक्षा के अत्यंत संवेदनशील क्षेत्र को सर्वसुलभता एवं गुणवत्ता प्रशासन की जवाबदेही है। शिक्षा व्यक्ति को अन्वेषण करने व प्रशासन के कार्यों का मूल्यांकन करने योग्य बनाती है एवं सामाजिक परिवर्तन लाने की क्षमता रखती है।

यदि प्रशासन शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए शिक्षा के सभी मानकों को पूर्ण करता है तभी सामान्यजन की उपार्जन क्षमता में भी वृद्धि होगी। विद्यार्थियों की आत्मनिर्भरता बढ़ाने के अधिक से अधिक विकल्प उपलब्ध करवाकर एवं कौशल, विकास द्वारा रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाकर प्रशासन अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण करेगा, तभी शिक्षक आने वाली पीढ़ी को सृजनशील बनाकर अपनी जवाबदेही को पूर्ण करके राष्ट्र को विकास के मार्ग पर ले जा सकेंगे। ❑

(व्याख्याता रसायन शास्त्र, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर)

पारदर्शिता और जवाबदेही कितनी जरूरी

शिक्षा अधिकार अधिनियम समाज के हर वर्ग और अंतिम व्यक्ति तक शिक्षा पहुँचाने के लिए केवल निर्देश देता दिखाई देता है पर यह कैसे संभव हो कि इसका समाधान हो सके। इसके लिए यह कानून कोई स्पष्ट निर्देश नहीं देता है। जिसके कारण राज्य सरकारें इन व्यवस्थाओं पर कतराती नजर आती हैं। शिक्षाधिकार गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा के लिए केवल शिक्षकों को बाध्य करता है। जबकि यह एक त्रिध्रुवी प्रक्रिया है जिसमें अभिभावक को जवाबदेही बताए बिना शत प्रतिशत परिणाम की उम्मीद करना व्यर्थ है। कानून इस व्यवस्था से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति की जवाबदेही तय करता है। यही कारण है कि आज तक स्कूलों में छात्रों की उपस्थिति तक हम तय नहीं कर सके। जब प्रश्न आता है तो इसकी जिम्मेदारी अध्यापक पर डाल दी जाती है। दूसरा कोई जवाबदेही लेने को तैयार नहीं है। परिणाम हो रहा है कि आजादी के 69 वर्ष बाद भी शिक्षा की गुणवत्ता के लिए हम एक दूसरे को कोस रहे हैं।

❑ **बजरंगी सिंह**

यह सर्वविदित है कि किसी देश व वहाँ के नागरिकों के समेकित विकास के लिए शिक्षा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अवयव है। अत: देश, समाज और नागरिकों के विकास के लिए शिक्षा, सरकारों की प्राथमिकता सूची में होनी चाहिए। हालांकि अन्य क्षेत्रों की तरह शिक्षा में भी सरकारी नीतियों में पारदर्शिता और जबाबदेही का अभाव देखने को मिलता है। पारदर्शिता और जबाबदेही के अभाव के कारण नागरिकों से कर के रूप में हासिल होने वाले धन का एक बहुत बड़ा हिस्सा, जो कि सरकार के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में खर्च किया जाता है, बर्बाद हो जाता है। अपेक्षित परिणाम न मिलने पर सरकारों द्वारा इस मद में बजट को और अधिक बढ़ाने की प्रक्रिया और संबंधित विभाग, अधिकारियों आदि की जवाबदेही तय करने की है।

शिक्षा अधिकार का ड्राफ्ट तैयार होते समय देश के शिक्षाविदों में शिक्षा के लिए एक नई आशंका हो रही थी। देश एक बदलाव की उम्मीद के सपने संजोने लगा था। वर्ष 2005 से तैयार होते-होते 2009 में यह अधिकार पूरे देश में लागू हो गया। शुरुआती दिनों में तो लोगों को यह उम्मीद थी कि क्रांतिकारी परिवर्तन हो जाएगा, पर धीरे-धीरे समय बीतने के साथ ही लोगों में आशाएँ धूमिल होती दिखने लगीं और आशाओं पर पानी फिरने लगा। इस कानून के लागू होते समय कुछ लचीलापन अपनाते हुए राज्यों को व्यवस्था एवं मूलभूत आवश्यकताएँ जुटाने के लिए पाँच वर्ष का समय दिया गया था।

शिक्षा अधिकार कानून लागू होने के 6 वर्ष बाद भी प्राथमिक सरकारी स्कूल की बदहाल सूरत शिक्षा के लिए राज्यों के दृष्टिकोण और कानून की दुर्दशा बयाँ करने को पर्याप्त है। आजादी से अब तक लगभग 50 शिक्षा आयोगों के गठन और इन आयोगों की संस्तुतियाँ अपनाए जाने के बाद भी जब शिक्षा के स्तर में अपेक्षित सुधार न हुआ तो शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 को देश ने एक परिवर्तन के रूप में देखा था, लेकिन राज्यों के ढुलमुल राजनैतिक निर्णयों और नौकरशाही के भ्रष्ट व कामचोर रवैये के कारण हम अपने को वहीं खड़ा पाते हैं, जहाँ से 2009 में चले थे। 6 वर्षों में भी अधिकांश राज्य न तो

प्रत्येक गाँव में सरकारी स्कूलों को पर्याप्त भौतिक संसाधन उपलब्ध करा सके और न ही शैक्षिक गुणवत्ता ही विकसित हो सकी। देखा जाए तो अधिकांश राज्य इस मामले में असफल सिद्ध हुए हैं।

इन वर्षों में जैसे-तैसे केंद्र सरकार द्वारा सर्व शिक्षा के तहत उपलब्ध कराए गए धन से एक अल्प सुविधायुक्त भवन ही उपलब्ध हो सका है। चिंता यह भी है कि क्या राज्य सर्व शिक्षा अभियान के खत्म होने के बाद नये भवनों का निर्माण कर पाएँगे और पर्याप्त फर्नीचर, एक अच्छी सुसज्जित प्रयोगशाला और अच्छा शौचालय, हरे-भरे खेलकूद के लिए मैदान अभी भी इन स्कूलों के लिए एक सपना है। यह कानून इन भौतिक सुविधाओं को राज्यों के सामने आग्रह सा करता नजर आता है और राज्य भौतिक सुविधाओं के लिए केंद्र के सामने हाथ फैलाए नजर आते हैं। ऐसे में केंद्र और राज्य के बीच बजट की लड़ाई कई रूपों में आम जनता के बीच आ चुकी है।

शिक्षा अधिकार अधिनियम समाज के हर वर्ग और अंतिम व्यक्ति तक शिक्षा पहुँचाने के लिए केवल निर्देश देता दिखाई देता है पर यह कैसे संभव हो कि इसका समाधान हो सके। इसके लिए यह कानून कोई स्पष्ट निर्देश नहीं देता है। जिसके कारण राज्य सरकारें इन व्यवस्थाओं पर कतराती नजर आती हैं। शिक्षाधिकार गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए केवल शिक्षकों को बाध्य करता है। जबकि यह एक त्रिध्रुवी प्रक्रिया है जिसमें अभिभावक को जवाबदेही बताए बिना शत प्रतिशत परिणाम की उम्मीद करना व्यर्थ है। कानून इस व्यवस्था से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति की जवाबदेही तय करता है। यही कारण है कि आज तक स्कूलों में छात्रों की उपस्थिति तक हम तय नहीं कर सके। जब प्रश्न आता है तो इसकी जिम्मेदारी अध्यापक पर डाल दी जाती है। दूसरा कोई जवाबदेही लेने को तैयार नहीं है। परिणाम

हो रहा है कि आजादी के 69 वर्ष बाद भी शिक्षा की गुणवत्ता के लिए हम एक दूसरे को कोस रहे हैं।

मानव संसाधन एवं विकास मंत्री प्रकाश जावडेकर ने राष्ट्र निर्माण और शिक्षा के बदलाव में शिक्षकों की भूमिका को महत्त्वपूर्ण माना है। उन्होंने शिक्षकों के लिए शिक्षा में जवाबदेही का प्रावधान करने की बात कही है। शिक्षा क्षेत्र में मुद्दों के निर्धारण करने के लिए एक टीम बनाने पर जोर दिया है और कहा है कि हमें टीम के तौर पर काम करना होगा। विचार निश्चय ही उत्तम है, लेकिन इसे कौन मूर्त रूप देगा। यानी जब तक हम नीचे से ऊपर तक हर एक की जिम्मेदारी तय नहीं करते, तब तक शिक्षा क्या किसी भी क्षेत्र में न तो अपेक्षित सुधार हो सकेगा और न ही जवाबदेही ही तय हो पाएगी। हम जो भी नियम या कानून बनाएँ, उसकी पारदर्शिता स्पष्ट हो, ताकि किसी को बहाने खोजने की जरूरत न पड़े। उम्मीद है कि नए एचआरडी मंत्री इस पर गौर करेंगे।

थोड़ा पीछे मुड़कर यह देखना जरूरी है कि भारतीय नौकरशाही में जो खामियाँ हैं, उन्हे दूर करने के लिए सार्वजनिक निगरानी प्रणाली कहाँ तक कारगर हो सकती है। इसके पहले यह कारगर सिद्ध हो, बायोमैट्रिक उपस्थिति प्रणाली से प्राप्त जानकारी से नौकरशाही की प्रवृत्ति का भी पता चलता है। नौकरशाही पर लंबे समय से शोध करने वाली संस्था का सुझाव है कि आर्थिक पुरस्कार और दंड देकर सरकारी कर्मचारियों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। इस आर्थिक पुरस्कार का मूलभाव यही है कि सरकारी कर्मचारियों में भी औरों की भांति कामचोरी और मेहनत से बचने की प्रवृत्ति होती है। इसका समाधान यही है कि ऊपर से लेकर नीचे तक पदानुक्रमिक रूप में कर्मचारी और अधिकारी इसका पालन करें।

जब तक आप अपनी समस्याओं एवं कठिनाइयों की वजह दूसरे को मानते रहेंगे, तब तक आप अपनी समस्याओं एवं कठिनाइयों को दूर नहीं कर सकते हैं। इस दुनिया में असंभव कुछ नहीं है, जो हम सोच या कर सकते हैं, दूसरे भी वह कर सकते हैं। सफलता हमारा परिचय दुनिया को करवाती है और असफलता हमें दुनिया का परिचय कराती है। प्रबंध में पारदर्शिता और जवाबदेही की बात तो सब करते हैं पर वास्तव में पारदर्शिता कहीं नजर नहीं आती और जवाबदेही तो बस एक स्वप्न समान है। पारदर्शिता और जवाबदेही न केवल लोगों को करीब लाती है, बल्कि सरकार से जोड़ती भी है और निर्णय लेने की प्रक्रिया में उन्हें समान रूप से अहं भागीदार भी बनाती है। जवाबदेही और पारदर्शिता के अभाव के चलते ही आज शिक्षा क्षेत्र में हर जगह भ्रष्टाचार और उदासीनता देखने को मिल रही है। इसके लिए कोई एक व्यक्ति या वर्ग जिम्मेदार नहीं है। यदि हम शिक्षा में गुणवत्ता और रचनात्मकता लाना चाहते हैं तो हमें स्कूल, अभिभावक, शिक्षा विभाग और उससे जुड़े सभी लोगों को अपनी-अपनी जिम्मेदारी ईमानदारी के साथ समझनी पड़ेगी, तभी शिक्षा में पारदर्शिता और जवाबदेही का वातावरण बन सकेगा। ❑

(स्वतंत्र लेखक)

जवाबदेही से मुक्त शिक्षा व्यवस्था

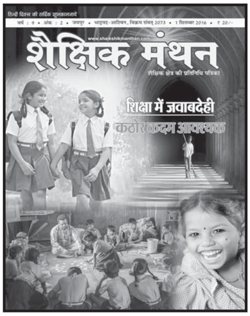

दरअसल, बच्चा एक अनगढ़ पत्थर की तरह होता है जिसमें सुंदर मूर्ति छिपी होती है, जिसे शिल्पी की आँख ही देख पाती है। वह उसे तराश कर सुंदर मूर्ति में बदल सकता है। इसी प्रकार माता-पिता, शिक्षक और समाज भी बच्चों को सँवार कर उन्हें खूबसूरत व्यक्तित्व प्रदान कर सकते हैं। आज देश को एक नई शिक्षा नीति की जरूरत है। 1986 की शिक्षा नीति भारत में शिक्षा की मार्गदर्शक रही है। इस नीति की समीक्षा करके 1992 में इसे अपना लिया गया और आज भी यही लागू है। जबकि देश के आर्थिक, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में व्यापक बदलाव आया है। दरअसल उदारवादी आर्थिक नीतियों और विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के चक्कर में सरकारें सामाजिक दायित्वों से मुँह मोड़ रही हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे विषय आज उनकी प्राथमिकता नहीं रह गए हैं।

❑ **विजन कुमार पांडेय**

आज भी देश में एक लाख से अधिक स्कूल सिर्फ एकल शिक्षक के भरोसे चल रहे हैं। केवल एक शिक्षक पूरे स्कूल के छात्रों को कैसे पढ़ा लेता होगा, सोचने वाली बात है। यह रिपोर्ट देश में स्कूली शिक्षा की बदहाल तस्वीर पेश करती है। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के बारे में संसद में पेश रिपोर्ट के अनुसार मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश की हालत सबसे खराब है। आजादी के सत्तर साल बाद भी अगर देश में स्कूली शिक्षा को पटरी पर नहीं लाया जा सका है तो यह एक बेहद चिंताजनक विषय है। केवल एक शिक्षक कितनी जिम्मेदारी से पढ़ाता होगा और छात्रों को उनकी बात कितनी समझ में आती होगी, यह सोचने वाली बात है। इस रिपोर्ट से साफ है कि शिक्षा को लेकर सरकारें गंभीर नहीं हैं। ये विडंबनापूर्ण स्थिति इसलिए है क्योंकि नीति और उसे लागू करने के बीच काफी बड़ी खाई है। शिक्षा के प्रसार के लिए जो शिक्षा का अधिकार अधिनियम लाया गया उसके अनुसार प्रति 30-35 छात्र पर एक शिक्षक होना चाहिए। लेकिन, इस अनुपात को लागू करने में बहुत विषमता है। जहाँ बड़ी संख्या में स्कूलों में शिक्षक नहीं हैं, वहीं तमाम स्कूल ऐसे भी हैं जहाँ शिक्षक ज्यादा हैं, मगर छात्र कम। हालांकि, यह स्थिति कम ही स्कूलों में है। ऐसे हालात में इन शिक्षकों की नियुक्ति वहाँ की जानी चाहिए जहाँ बच्चे ज्यादा और शिक्षक कम हों।

किसी भी लोकतंत्र के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य- दो सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण विषय होते हैं। संयुक्त राष्ट्र ने जो सहस्राब्दी लक्ष्य तय किए हैं उनमें शिक्षा भी एक है। एनसीईआरटी और गैर सरकारी संगठन 'प्रथम' ने स्कूलों और सीखने की गुणवत्ता पर एक सर्वेक्षण किया जिससे हताश कर देने वाले आँकड़े सामने आए। इस रिपोर्ट के अनुसार आठवीं कक्षा के पच्चीस प्रतिशत बच्चे ऐसे हैं, जो दूसरी कक्षा की किताबें पढ़ नहीं पाते हैं। दूसरी कक्षा के बत्तीस प्रतिशत बच्चे ऐसे हैं जो हिंदी अंग्रेजी की वर्णमाला ठीक ढंग से नहीं पढ़ पाते हैं। पाँचवीं कक्षा के पचास प्रतिशत से अधिक बच्चे ऐसे हैं जिन्होंने

वे बुनियादी कौशल भी नहीं सीखे हैं जो उन्हें दूसरी कक्षा में ही सीख लेने चाहिए थे। इससे भी अधिक आठवीं के आधे से अधिक बच्चे बुनियादी गणित करने में भी सक्षम नहीं हैं। यही कारण है कि अधिक से अधिक लोग अपने बच्चों को निजी स्कूलों में पढ़ाना चाहते हैं। इस कारण ग्रामीण क्षेत्रों में भी बड़े पैमाने पर निजी स्कूल खुलते जा रहे हैं लेकिन उनमें भी शिक्षा की कोई गुणवत्ता नहीं है। वहाँ शिक्षा को एक कारोबार बना दिया गया है। जिसमें पैसे वालों की पूछ होती है गरीबों की नहीं।

दरअसल, बच्चा एक अनगढ़ पत्थर की तरह होता है जिसमें सुंदर मूर्ति छिपी होती है, जिसे शिल्पी की आँख ही देख पाती है। वह उसे तराश कर सुंदर मूर्ति में बदल सकता है। इसी प्रकार माता-पिता, शिक्षक और समाज भी बच्चों को सँवार कर उन्हें खूबसूरत व्यक्तित्व प्रदान कर सकते हैं। आज देश को एक नई शिक्षा नीति की जरूरत है। 1986 की शिक्षा नीति भारत में शिक्षा की मार्गदर्शक रही है। इस नीति की समीक्षा करके 1992 में इसे अपना लिया गया और आज भी यही लागू है। जबकि देश के आर्थिक, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में व्यापक बदलाव आया है। दरअसल उदारवादी आर्थिक नीतियों और विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के चक्कर में सरकारें सामाजिक दायित्वों से मुँह मोड़ रही हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे विषय आज उनकी प्राथमिकता नहीं रह गए हैं।

आज समाज में जो वातावरण बच्चों को मिल रहा है, वहाँ नैतिक मूल्यों के स्थान पर भौतिक मूल्यों को महत्त्व दिया जाता है, जहाँ एक अच्छा इंसान बनने की तैयारी की जगह वह एक धनवान, सत्तावान, समृद्धिवान बनने की हर कला सीखने के लिए प्रेरित हो रहा है ताकि समाज में उसकी एक 'स्टेटस' बन सके। माता-पिता भी उसी दिशा में उसे बचपन से तैयार करने लगते हैं। भौतिक सुख-सुविधाओं का अधिक से अधिक अर्जन ही व्यक्तित्व विकास का मानदंड बन गया है। आत्म-संयम, सेवा भावना, कर्त्तव्यबोध, श्रम, त्याग, समर्पण आदि गुणों से बना सादा जीवन उनका आदर्श नहीं रहा। आज आवश्यकता इस बात की है कि बच्चों को सही प्रेरणा, सही मार्गदर्शन और सही परामर्श के साथ स्वस्थ पारिवारिक और सामाजिक वातावरण मिले। शिक्षा संस्थाओं की भी यह जिम्मेदारी है कि वे बालकों और किशोरों की ऊर्जा और क्षमता को सही रचनात्मक दिशा दें। ताकि वे भौतिक और आत्मिक विकास में संतुलन बनाने की कला सीख सकें।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी जिस तरह बच्चों के मन-मस्तिष्क को प्रदूषित कर रहा है वह भी चिंता का ही विषय है। विश्व में बढ़ती हिंसा, अपराध के नए-नए तरीके, क्रूरता, नफरत, भौंडा अंग-प्रदर्शन और केवल संस्कृति बच्चों को बुरी तरह प्रभावित कर रही है। विदेशी चैनलों और विदेशी फिल्मों के जरिए परोसी जा रही अश्लील संस्कृति भी बच्चों को बिगाड़ रही है।

किसी भी राष्ट्र की प्रगति ही नहीं, वरन उसका अस्तित्त्व भी बालशक्ति के प्रभावशाली उपयोग में निहित है। आज के बच्चे जो कल के नागरिक होंगे, उनकी क्षमताओं, योग्यताओं का शीघ्र पता लगाकर उनको वैसा प्रशिक्षण देकर ऐसी दिशा में मोड़ा जाए, जिससे केवल उन्हें ही आत्म-संतुष्टि न हो बल्कि राष्ट्र की समृद्धि में उनका समुचित योगदान मिल सके।

प्रशासन के लाख दावों के बावजूद एक बार फिर निजी स्कूलों की मनमानी अभिभावकों पर भारी पड़ रही है। निजी स्कूलों की शिक्षण सामग्री चुनिंदा दुकानों पर मनमाने दाम में बिकती है। सीमित स्थानों पर उपलब्धता के कारण अभिभावकों को मजबूरी में मँहगे दाम पर किताबें खरीदनी पड़ती हैं।

कई स्कूलों में निजी प्रकाशकों की किताबें चलती हैं। इनके दाम एनसीईआरटी की किताबों से कई गुना ज्यादा होते हैं। निजी प्रकाशकों और स्कूल संचालकों के गठजोड़ से चलाई जा रही इन किताबों से अभिभावकों की जेबें ढीली हो रही हैं। दूसरी ओर शिक्षा विभाग ऐसे निजी स्कूलों की मनमानी पर नकेल कसने में नाकाम साबित हो रहा है। गरीब अभिभावकों को रोज यही डर सताता है कि वे अपने बच्चे को आगे पढ़ा पाएँगे कि नहीं। प्रवेश शुल्क से लेकर किताब-कापियों के दामों में हुई बेतहाशा बढ़ोतरी से लोगों के घर का बजट तो बिगड़ ही रहा है साथ में गरीब बच्चों का भविष्य भी अंधकारमय हो रही है। यह कैसा सपना सरकार दिखा रही है? अभी हाल ही में गाजियाबाद के एक निजी स्कूल में पढ़ने वाली लड़की ने महज इसलिए आत्महत्या कर ली क्योंकि उसके पिता दो महीने से उसकी फीस नहीं भर पा रहे थे। क्यों सरकारें ऐसे स्कूल चला रही हैं, जहाँ खानापूर्ति के लिए कक्षाएँ चल रही हैं और शिक्षकों को तनख्वाह मिल रही है। हमारी शिक्षा व्यवस्था का इस तरह बिगड़ना घोर चिंता का विषय है, लेकिन नीतिकार और योजनाकार हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं।❑

Education and Accountability

❑ **Dr. TS Girishkumar**

The concept of accountabil ity is one concept that must be introduced as a postulate to all thoughts and action alike. Perhaps the whole sense, the whole meaning of all phenomena may be said to rest in this phenomenon, of making accountability 'the' postulate of everything. However, the concept of accountability needs to be understood and explained, prior to conceiving of it on a practical plane.

The concept of accountability

The concept of accountability has definite ingredients built in. Accountability should be on some basis, and towards something, system or even person. One must be aware of what-how and in which direction accountability ought to be.

For Bharat, accountability at once acquires the basis as the Vedopanishadic knowledge tradition. The Vedopanishadic knowledge tradition gave rise to a Sanskriti, that we call today the Bharatiya Sanskriti. From this Bharatiya Sanskriti evolves the transcendental longing of human consciousness towards the 'beyond' which becomes the Dharma. This precisely becomes the postulate, the basis for any concept of accountability in Bharatiya context.

Adolf Hitler normally is an unwelcome character to maximum people. We know that he was not normal, and was erratic on many plains. But from what I understand, he was the first one to introduce the concept of "responsible democracy" while discussing many things in his auto biography, "Mein Kemp". I don't know whether or not Hitler could ever come closer to practicing it with the Hapsburg rule around, and also don't know to what extent his dreams got realised even when he became the 'Herrer' (!!!!). Nonetheless, with all his 'madness' he had some fantastic dreams. He wanted democracy to be 'responsible democracy'. He also wanted individual accountability, where each individual parliamentarian is assigned with specific job and he alone shall have to answer upon anything concerned with that specific. He dreamt of a situation where no one can evade responsibility, and finally, he also imagined that if the people can elect people to offices, then people also must be able to eject people down from the same offices, in the same manner.

Thus in Europe, perhaps it must be Hitler who first thought about accountability in a larger scale, albeit we

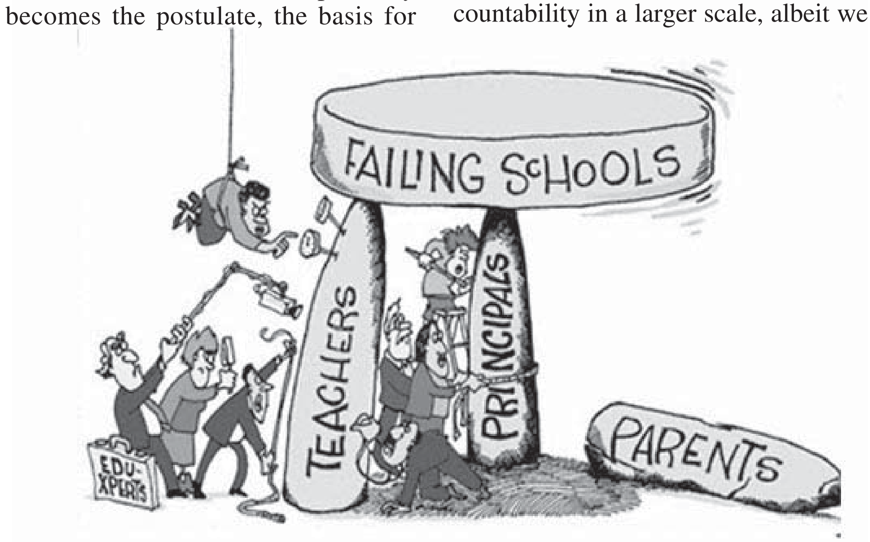

For Bharat, accountability at once acquires the basis as the Vedopanishadic knowledge tradition. The Vedopanishadic knowledge tradition gave rise to a Sanskriti, that we call today the Bharatiya Sanskriti. From this Bharatiya Sanskriti evolves the transcendental longing of human consciousness towards the 'beyond' which becomes the Dharma. This precisely becomes the postulate, the basis for any concept of accountability in Bharatiya context.

do not really know whether or not he was able to put it into practice. But the thoughts were fantastic and good in theories.

Education and accountability

The concept of education is brought out clearly in a better manner by none other than Bharatiya Acharyas. The Upanishads are full of instructions to this effect. On the one hand the process of learning could be said to be "Sahanavavatu Sahanao Bhunaktu" for "Sahavirya" to eventually create "Tejaswis", and on a metaphysical plane, "Vidya" is "Vimuktaye", leading to liberation, Moksha itself. Thus the question of a concept of accountability, of a concept of education, is well declared and spelt out clearly in Bharatiya knowledge tradition. Education as such is to refine humans and create Sanskritas out of normal and unrefined men. A society of Sanskritas, a society of Sanskaris is at once the perfect society with all other things naturally falling in place. So, what ought to be education, what ought to be its role in society such things we have clear visions and ideas. From this we can also understand how accountable, and to whom it all shall be accountable and such phenomena.

Accountability of the educators

The educators, the teachers are to have two levels of accountability. First of all, they must be accountable to a strong postulate of a given knowledge tradition, provided the society has such a knowledge tradition. Secondly, the teachers should be accountable to the society and the nation.

Bharat has the oldest knowledge tradition of the world. The Bharatiya knowledge tradition is so ancient, that should there be a second knowledge tradition, that is much later than the Bharatiya knowledge tradition. Bharat also has this advantage that Bharatiya knowledge tradition is still active and constantly becoming more. It is a fact that the growth of Bharatiya knowledge tradition had suffered major setbacks for thousands of years, but the philosophy and the Sanatana character had kept the whole thing alive. The Hindu Dharma had indeed kept the whole thing alive, and had successfully transmitted it from generations to generations for tens of thousands of years.

The examples from Greek knowledge tradition are both appalling and unfortunate. Greek knowledge tradition became extinct, with the destruction of their religion, Hellenism. Similarly, the Inca civilisation also had become extinct with the end of their religion. The entire European Philosophy had begun from Greek philosophy after the European medieval period of Papacy, but by then Greek knowledge tradition had long become extinct. We have just three back philosophers from Greece, Socrates, Plato and Aristotle, each one the student of the predecessor in chronology. But then there it all ended, with the Roman conquest.

Accountability arising from the consciousness of Bharatiya knowledge tradition becomes the first postulate for us. The fundamental accountability is to the knowledge tradition itself, and to this end, the teachers themselves must be aware of their own ancestry. In seventy years of Bharatiya independence from alien rule, this aspect had been completely neglected by all successive administrators, policy makers and planners. The rulers, who came after the alien rules, were so alienated Bharatiyas, that they remained ignorant of what they really are and treated Bharat as obsolescence anachronism. And such education policy kept successfully estranging our generations for all these time, even in post independent Bharat.

The negativism arising from Euro centrism and treating Bharatiya knowledge obsolete.

This functions as a double edged sword. On the one hand there is this blind acceptance and lauding of anything what is European, and on the other hand, ignoring anything Bharatiya as suffering from obsolescence. Obviously, treating Bharatiya knowledge as nothing is from the fact that such people do not have any serious ideas of what is Bharatiya knowledge, and let us ask this prize question, who is accountable for these? Why is that our generations, both of the old and new alike is not given the knowledge of what we are?

And we do have the nasty repercussions of these. During the first days of our independence, the national fervour was high, resulting from great contributions of great Bharatiyasfrom every nook and corner of this nation. Then it ought to have been the case that we pattern our education in such a manner that the knowledge of what we are also is imparted. But this did not happen. Both communists and Euro centric babus took reign of things and created a generation of hybrids in academics.

Why JNU?

JNU is just one example. I, when joined JNU as a PhD student in the eighties found the whole atmosphere as suffocating and unbearable. They were all 'modern' and 'updates', with literature and poetries of select people whom they used to celebrate as the in thing. When I wanted to clear doubts, it didn't take much time to get me branded as man with obsolete notions. This naturally intensified with some knowing of me as

Swayam Sevak, which they found 'very funny'. My suffocation was to that extent that I left that University forsaking admission, time and money.

The whole thing is one sided blindness of copycat culture multiplied by the ignorance of what one really is. Just some group keep celebrating certain theories, some thinkers, quoting from them and keep appreciating one another and all novices follow suit. This plenomenon is often supported by some teachers who themselves feel that they are 'intellectuals' which the students repeat.

From here, being intellectual becomes being 'critical', critical of everything, critical of all establishments, critical of what is normal, critical of anything traditional, and all these, and also ad-infinitum. It becomes 'the fashion' to go against, and also to go against all 'conformism'. The negativity generated in such atmosphere becomes enormous; the supporters of such negativity are many and profound, and there is no suggestion from any of their theories about what may be next, or what may the goal be; and obviously, in a materialistically inclined mentality, there is no end or final goal.

Their Acharya, Karl Marx has a theory of 'Ideology as False Consciousness'. The same 'intellectuals' who talk a lot about 'false consciousness' are utterly in irredeemable false consciousness. Unfortunately, during a dream, and while the dream lasts, there is no way for one to realise that he is in dream. One can only know that he was in dream after he is awakened. This, precisely, is the case with such 'intellectuals' whose fetishism with being intellectual is beyond redemption.

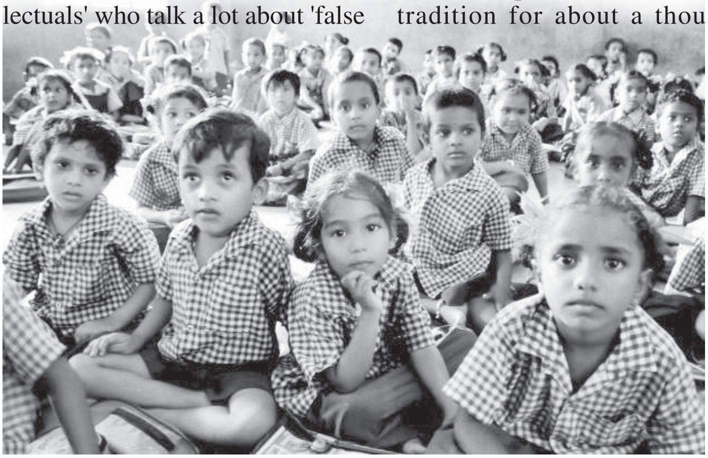

Unaccountability

The above case is a classic example of teacher's unaccountability both to own knowledge tradition, society and eventually to nation. How could there be slogans aspiring for destruction of the very foundation of their own existence? How could youngsters shout that Bharat shall disintegrate? Wrong theories, wrong lessons.

Unaccountability shall devastate nations, civilisations and great cultures, until and unless there is strong counter force. Greece could not have it, the Incas could not have it, and many other world civilisation could not have it, and they all died out.

This is what really makes Bharat Punyabhumi. When corrections were needed in later Vedic society, Avatars like Buddha came and made proper corrections. When Bharatiyas had estranged from Vedopanishadic knowledge tradition for about a thousand years, Sankaracharya came to re-establish the authority of the Vedopanishadic knowledge tradition. When the Moghuls were sucking the vitality of Bharat, Chhatrapati Shivaji Maharaj came injecting new vigour and vitality into the very souls of Bharat. When in British rule, there came series of thinkers and Seers. This nation is such, which is capable of producing great minds as Avatars from time to time, which, is rightly predicted in Gita.

And now, it is NaMo, who is effortlessly taking India to Bharat.

And such positive forces shall act, be active and work towards reconstructions, though this shall go on to face new challenges from new directions from time to time. And we have the potential to produce the right thing for the right situation, which is a testified fact by time.

Teacher's accountability

A teacher thus has tremendous responsibilities. Fundamentally and essentially he must equip himself with the knowledge of what is the very basis of Bharatiya pride, which is Bharatiya knowledge tradition. Further, he must create opportunities to impart these knowledge traditions to the future generation from time to time. The teacher has a multiple challenge. On the one hand he has to effectively resist the invasions from Eurocentric thoughts, and on the other hand it must be possible for him to make what is Bharat an interesting phenomenon to children. There is no much difficulty in class rooms, there are positive forces thriving Sanatantva all over, our students are aware of it directly or indirectly. It shall bework hard to know us, and work further hard to make known what is known to the teacher. ❑

(Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

Accountability in Higher Education

❑ Dr. Alpana Kateja

A comparative study of India's higher education metrics reveals some interesting insights, India has the second highest number of students in higher education after China and is expected to surpass China in the next decade. Today, one in four graduates in the world would have been educated in India.If India is to reap the 'demographic dividend' the key question then is around the quality of education provided at higher education as well as the employability of those who are products of the higher education system. The figures pertaining to these are not encouraging, to say the least.

The higher education sector in India has been burgeoning; especially in the last decade with the number of recognised colleges close to doubling from 19,812 in 2006-07 to 36,671 in 2013-14. Similar trends are seen for the number of recognised Universities which grew in number from 371 to 712 in the same period. There were 15.6 million students in 2006-07 going upto 29.6 million in 2012-13.

A comparative study of India's higher education metrics reveals some interesting insights, India has the second highest number of students in higher education after China and is expected to surpass China in the next decade. Today, one in four graduates in the world would have been educated in India.If India is to reap the 'demographic dividend' the key question then is around the quality of education provided at higher education as well as the employability of those who are products of the higher education system. The figures pertaining to these are not encouraging, to say the least.

In matters of employability, Indian graduates have a poor record, especially those who graduate from institutions other than the top-tier centres.Only 4 higher education institutions from India appear in the Times Higher Education World University Rankings for the top 400 global universities.

There are a multitude of factors that explain the twin-phenomenon of poor quality of higher education and low employability.There is a common thread that runs between major challenges which further aggravates the problems posed by each of them; it is the systemic lack of accountability that is present across the higher education system in India.

Accountability and lack there of in Indian Higher Education

It will be useful to study the lack of accountability in educational institutions and prescribecorrective measwus on how the current state of affairs can be ameliorated.

The great tragedy played out in the Indian higher education system is that no one is held accountable for the poor performance of students. This is not to deny that it is primarily the students' responsibility to ensure that they assimilate the knowledge and learning they are being provided and graduate

successfully. But who is to ensure that students receive the education and learning that they are deserving of when they choose to attend a college or university?

There are several stakeholders whose active involvement and engagement is crucial to solve this accountability conundrum. They are; the students themselves, members of faculty, administrators at the institute, (these stakeholders will jointly be referred to as "internal stakeholders" as in internal to the institute where the student is based). The role of governmental education bodies, state and central government and civil society at large is also relevant and they are the "external stakeholders".

The approach that this paper would like to propose is one which is based on the premise that self-regulation is the best form of regulation, one that does not distort policy goals and create perverse incentives. However having said so, it will be foolish to not have an overarching framework of continuous assessment and tracking that is carried out external to the institute and which becomes more involved if the internal accountability mechanism fails.

As part of the internal regulation, it is very important to have a feedback system whereby the students can provide feedback to the administration about faculty. Needless to say, such a system should allow anonymous feedback from the students, and should consist of objective and tangible questions rather than open ended questions. For example, it would be better to ask if the classes were held regularly, or whether the aim of the course was specified clearly at the beginning of the course.

It is not enough to just pay lip service and have a feedback system as a tick in the box, but to actually internalise feedback of the students and take appropriate steps. Furthermore it might be meaningful to have a staged hierarchy for student feedback and grievance redress. If the student feedback is not resolved at the first level (faculty member) then there should be a feedback loop to the second level (academics head) who will step in to address student concerns. If that level also fails then the onus would be on the final internal level(institute's governing body). If this internal mechanism fails and external stakeholders are required to be involved then the line of questioning on accountability will start with the institute's governing body and then percolate down so as to impress upon each level the importance of their role.

Another internal measure that can further the cause of accountability is to have tenure based professorship and also periodic review of performance. The periodic review process should ensure that the faculty member is assessed on both teaching capability and research output.

A pragmatic way to ensure accountability in education is to set clear, result-linked and tangible targets, for the institutes to achieve. For example, each institute offering higher education degrees should be asked to ensure that no more than a certain maximum percentage of students fail in any particular course. Another tangible target to aim for could be a certain campus placement percentage so that students undertaking the degree courses have some guarantees with respect to their future. Other examples of tangible metrics might include a minimum faculty to student ratio, minimum number of contact hours for each course and lab requirements for courses which have a practical counterpart.

These metrics can be linked to the grants that a university is eligible for. While each institution can be made eligible for a minimum level of grant; any increments to research and teaching grants would be linked to performances of the institution on the set of metrics mentioned above. Such an incentive driven method could further help the cause of accountability. There are, of course, limitations to an entirely incentive driven system as this could encourage institution to falsify performance. To address such instances a counterpoint needs to be developed in the form of an overarching central institution which conducts anonymised reviews of through students to ensure all is as is reported by the institution.

Lastly it is important to state that all the performance metrics for various institutions should be available in the public domain to encourage transparency as well as open discussion amongst the civil society.

To sum up, the Indian higher education system is currently in the throes of the twin problems of poor quality of teaching and rampant employability. These problems can be traced to the lack of accountability endemic in the system. The existing system is "over-regulated and under governed". Here we have discussed some initiatives that can address this issue. Chief among them is ensuring strong institute-internal regulation complemented with extensive external monitoring which is linked to right incentives. ❑

(Professor of Economics and Principal, Maharani College UOR, Jaipur)

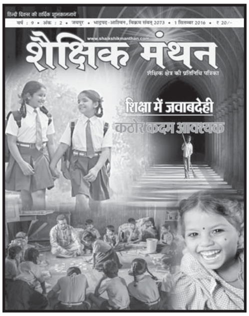

The catastrophic accountability situation calls for further root and branch reform. It requires amendment of Article 171 (3c) of the Constitution, to do away with teachers' guaranteed representation in the state legislature, which has turned teachers into politicians; it demands that publicly paid teachers (in aided schools) be recognised as holding an office of profit under the government and thus be debarred from contesting elections, which has created a culture of political activism among teachers; it needs Election Commission to reduce the proportion of teachers in the polling party that mans the voting booths during election time

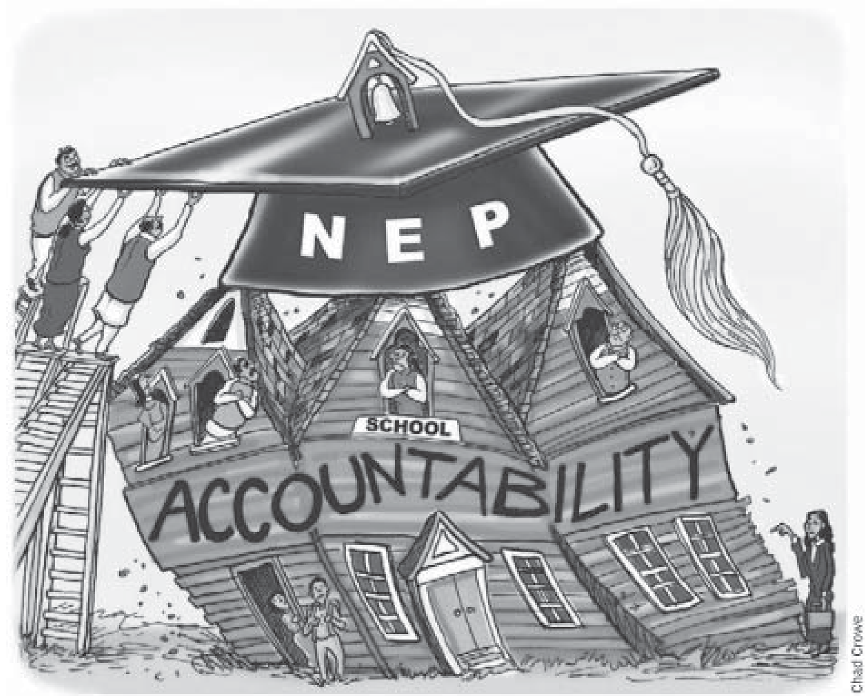

Elephant In The Room

❑ **Geeta Gandhi Kingdon**

Let us not mince our words. Remedying the deep malaise afflicting education in the country requires taking by its horn the bull of school and teacher accountability . Tinkering at the edges will not do the job.

But the framers of the New Education Policy (NEP) must accept that the required sweeping accountability reform will inevitably be painful as it will be strongly opposed by powerful and vocal lobbies.Yet the government must face the pain and take a principled rather than expedient stance.

The recommendations of the T S R Subramanian committee are a refreshing departure from the routine official `being in denial' of the problem; it candidly acknowledges the widespread corruption, lack of accountability and reform-blocking teacher unions.

The draft of the NEP released by the HRD ministry is more coy and conventional. Most importantly , it shies away from coming up with convincing remedies for the frightening disease.

At one level, the HRD ministry is to be congratulated for some excellent provisions in the draft NEP. However, with its huge number of proposed reforms, the NEP is impractical and in danger of suffering the same oblivion as the 1986 NEP which was also a wish list of policies without an overarching theme.

While the draft NEP does delineate some accountability-raising measures, most proposals are weak and vague, eg: "Issues relating to ... teacher accountability will be resolved with strong political consensus and will" but how consensus will be forged is not specified; "Principals will be held accountable for the academic performance

of the school", and "Programmes for enhancing ...accountability of teachers ... will be accorded priority", but who will do these in what time frame is not specified.

Although the proposal to vest disciplinary powers "with the School Management Committees ... to deal with absenteeism and indiscipline" is more promising, it alone is inadequate for the mammoth task. There is also no talk of enacting legislation to give the policy effect. On the contrary access and input senhancing policies that neglect accountability have sadly been given legislative force under the RTE Act 2009, which the draft NEP does nothing to abrogate. Section 6 of the RTE Act obligates states to establish public schools in all neighbourhoods, thus binding states to create more of the kind of non-accountable public schools that parents are deserting: during the short four year period from 2011to 2015, despite an increase of 9,448 public schools, total enrolment in public schools fell by 1.13 crore students and enrolment in private schools rose by 1.85 crore students in India, as per official DISE data.

By 2014-15, out of the total 10.53 lakh public elementary schools in the country , 3.72 lakh (or about 35% of all) public schools had 50 or fewer students, with an average of 29 students per school, 12.7 pupils per teacher, a teacher salary expense of Rs 40,800 per year per child, and a monumental teacher salary bill of Rs 41,630 crore in 2014-15, a diabolical and unconscionable wastage of scarce public resources on pedagogically unviable tiny schools! While the draft NEP says that "efforts will be made to convert existing non-viable schools into composite schools for ... better academic performance and cost effective management", unless the bête noire of school and teacher accountability is addressed, even these merged public schools will empty over time! To raise accountability, the government needs to introduce what almost all good education systems around the world do: incentives in the grant formula of funding for public and aided schools.

Per student funding is the single most powerful way of improving school teacher accountability , used in most educationally developed nations. When funding is made dependent on a school's number of students, then schools have a financial stake in giving good education in order to attract and retain students.

Further, giving per-student funding to schools indirectly, via a school voucher to parents (Direct Benefit Transfer, or DBT), fosters greater accountability since it empowers parents. With voucher funding, hundreds of parents monitor the school every day . This gives schools an inbuilt incentive to be accountable to voucher-bearing parents who can punish the schools by withdrawing their children and choosing another school.

Voucher schemes can also greatly improve equity , by giving every BPL child in the country the entitlement to attend a private school of their choice, or at least to poor children in 25% seats of private schools under the RTE Act 2009.

The catastrophic accountability situation calls for further root and branch reform. It requires amendment of Article 171 (3c) of the Constitution, to do away with teachers' guaranteed representation in the state legislature, which has turned teachers into politicians; it demands that publicly paid teachers (in aided schools) be recognised as holding an office of profit under the government and thus be debarred from contesting elections, which has created a culture of political activism among teachers; it needs Election Commission to reduce the proportion of teachers in the polling party that mans the voting booths during election time, to reduce politicians' perception that teachers decide election outcomes, which causes them to shelter chronically absentee teachers from due disciplinary action.

It needs empowering parents by publishing information through press websites, about the learning levels of children in the different schools within each town, to promote inter-school competition. This links directly to the prime minister's idea of putting expected learning levels on the wall outside every classroom.

The idea to formulate a new NEP is a wonderful initiative of the current government, but to fail to put accountability centre stage would be to miss a huge opportunity to restore Indian education to the greatness it deserves. ❑

(Prof. of Education Economics at University College, London)

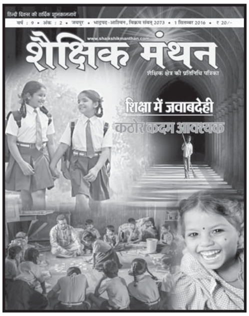

शिक्षा और चिकित्सा आज व्यापार बन गया है। स्कूलों ने दुकानों का रूप ले लिया है। यही कारण है कि हमारी स्कूली शिक्षा साफ तौर पर वर्ग विभाजन और सामाजिक भेदभाव का शिकार है। देश में सम्पन्न वर्ग और शिक्षित मध्यवर्गी परिवारों के बच्चों के लिए महंगे और आलीशान स्कूल हर शहर में उपलब्ध है। वहीं दूसरी ओर गरीब व पिछड़े वर्ग के बच्चे उन सरकारी या निजी स्कूलों में धकेल दिए जाते हैं, जहाँ दिखावटी तौर पर बुनियादी ढाँचा तो खड़ा है, किन्तु पढ़ाई-लिखाई सिर्फ नाम की होती है। सुब्रह्मण्यम समिति की सिफारिशों में शिक्षा नीति को 21वीं सदी की जरूरतों के अनुरूप बनने की बात कहीं गई है, पर उसमें केन्द्र व राज्य सरकारों को देश के हर बच्चे को एक जैसी अच्छी क्वालिटी की शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार नहीं बनाया गया है। लोकतंत्र में बिना भेदभाव के सभी को उच्च स्तरीय शिक्षा मिल सके इसकी व्यवस्था होनी चाहिए।

सबको समान शिक्षा का सपना

सुब्रह्मण्यम समिति ने पिछले महीने जिस नई शिक्षा नीति का मसौदा प्रस्तुत किया है, उसमें स्कूली शिक्षा के ऐतिहासिक विकास वर्तमान स्थिति और भविष्य की संभावनाओं पर काफी विस्तार से ब्यौरे दिए गए हैं। अभी इस मसौदे के प्रस्तावों पर राज्य सरकारों की राय ली जा रही है। क्योंकि स्कूली शिक्षा पर ज्यादातर नियंत्रण राज्य सरकारों का ही है। आजादी के बाद शिक्षा नीति दो बार 1968 और 1986 में घोषित की गई थी। स्कूली शिक्षा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कानून 2009 में संसद द्वारा पारित किया गया, जिसे शिक्षा का अधिकार अधिनियम के नाम से जाना जाता है। इस कानून के तहत केन्द्र और राज्य सरकारों को यह वैधानिक जिम्मेदारी दी गई है कि छह से 14 वर्ष की आयु के हर बच्चे को प्रारंभिक शिक्षा औपचारिक रूप से किसी ऐसे स्कूल में दी जाए, जहाँ सभी न्यूनतम मानक पूरे होते हों। इसी कानून के तहत हर निजी स्कूल में 25 प्रतिशत सीटें आर्थिक रूप से विपन्न वर्ग के बच्चों के लिए आरक्षित की गई है। हालांकि ज्यादातर प्राइवेट स्कूलों में इसका पालन ठीक तरह से नहीं किया गया है। सुब्रह्मण्यम समिति द्वारा बनाई गई नई शिक्षा नीति से क्या देश की स्कूली शिक्षा की सारी समस्याएँ कुछ ही समय में खत्म हो जाएंगी? इस बात पर बहस जरूरी है कि संविधान में छह से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा देने की गारंटी को देश अभी तक क्यों नहीं पूरा कर पाया? क्यों आज भी तीन करोड़ बच्चे प्रारंभिक शिक्षा से वंचित है। लाखों सरकारी और प्राइवेट स्कूलों में आज भी बुनियादी सुविधाएँ जैसे भवन, फर्नीचर, शिक्षक, शौचालय, किताबें उपलब्ध नहीं है। क्या नई शिक्षा नीति में इनके लिए समुचित वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था की गई है। क्या स्कूली शिक्षकों की भर्ती व प्रशिक्षण के बारे में कोई मौलिक विचार दिया गया है। सुब्रह्मण्यम समिति का जवाब ज्यादा चर्चित सुझाव शिक्षा का अधिकार कानून 2009 में लागू किए गए आठवीं कक्षा तक किसी भी छात्र को अनुत्तीर्ण न करने के प्रावधान को बदलकर पाँचवीं कक्षा तक सीमित करना है। समिति ने छठी से आठवीं कक्षा तक पढ़ाई में कमजोर बच्चों को सुधारात्मक शिक्षण देने और परीक्षा पास करने के दो अतिरिक्त अवसर देने का सुझाव दिया है। निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत स्थान गरीब वर्ग के बच्चों के लिए आरक्षित करने का प्रावधान का सुबह्मण्यम समिति ने पुरजोर समर्थन किया है और इसे अल्पसंख्यक

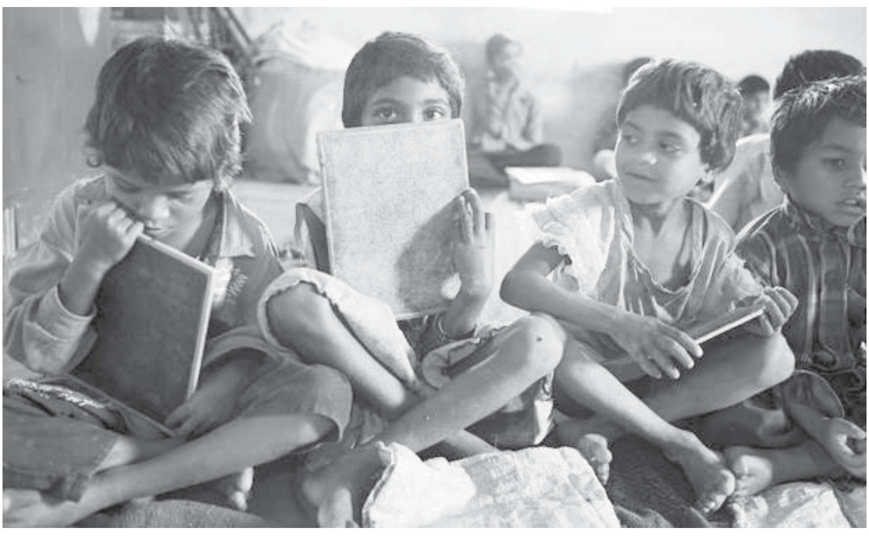

वर्ग के स्कूलों में भी लागू करने का सुझाव दिया है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में स्कूली शिक्षा की क्वालिटी सुधारने के वास्ते प्राइवेट स्कूलों के लिए भूमि, भवन, शिक्षक, फर्नीचर विषयक जो न्यूनतम मानक लागू किए थे, उन मानकों को सरकारी स्कूलों में भी सख्ती से लागू करने का सुझाव दिया है। वर्ष 1968 की शिक्षा नीति के अंतर्गत लागू किए गए त्रिभाषा फार्मूले के त्रुटिपूर्ण क्रियान्वयन पर भी सुब्रह्मण्यम कमेटी मुखर है। इसका कहना है कि पाँचवीं तक शिक्षा बच्चों की मातृभाषा में दी जानी चाहिए और प्राथमिक स्तर पर तीसरी भाषा के चुनाव का अधिकार राज्य सरकारों के ऊपर छोड़ दिया जाना चाहिए, इसका सीधा सा अर्थ यह है कि त्रिभाषा फार्मूले से कोई छेड़छाड़ नहीं की गई है।

सुब्रह्मण्यम समिति ने दसवीं की परीक्षा में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का सुझाव दिया है। चूंकि 10वीं की परीक्षा में फेल होने वाले ज्यादातर बच्चे गणित व विज्ञान विषयों से होते हैं, इसलिए इन दो विषयों में अब दो तरह से प्रश्न-पत्र बनाए जाएंगे। बुनियादी और उच्च स्तर। विद्यार्थियों को दोनों में से कोई भी प्रश्न-पत्र चुनने का विकल्प रहेगा। समिति का एक और अच्छा सुझाव मिड-डे मील योजना को 10वीं तक के स्कूलों में विस्तारित करने का है। समिति का यह भी कहना है कि शिक्षकों को मिड-डे मील के संचालन से मुक्त रखा जाए। समिति ने स्वयंसेवी और सामाजिक संस्थाओं से यह योजना संचालन करवाने को कहा है। स्कूली शिक्षा की सबसे कमजोर कड़ी है शिक्षक, जिनमें से अधिकांश में इस पेशे से कोई आत्मीय लगाव नहीं पाया जाता है। उनके लिए यह सिर्फ रोजी-रोटी का साधन है। समिति ने यह माना है कि स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने का एकमात्र उपाय यह है कि शिक्षकों की नियुक्ति, न्यूनतम योग्यता, प्रशिक्षण और पेशे के प्रति प्रतिबद्धता में गुणात्मक सुधार करना। मौजूदा शिक्षकों को पाँच वर्ष में एक बार प्रशिक्षण देने का सुझाव दिया गया है और भविष्य में नए शिक्षकों की भर्ती के लिए पाँच वर्षीय एकीकृत बीए, बीएससी, बीएड कोर्स शुरू करने की सिफारिश की गई है, जो 10वीं और 12वीं के बाद शुरू होंगे। समिति ने स्कूली पाठ्यक्रम और पुस्तकों के लेखन में शिक्षक संघों की भागीदारी की भी सिफारिश की है। देश की स्कूली शिक्षा को आज जिस ऊर्जावान, रूपांतरण, नेतृत्व क्षमता, कुशल प्रबंधन और विपुल संसाधनों की जरूरत है। उसकी स्पष्ट तस्वीर सुब्रह्मण्यम कमेटी की रिपोर्ट में नहीं दिखाई देती। सन् 1991 के बाद पिछले ढ़ाई दशक में उदारीकरण के दौर में केन्द्र और राज्यों की अधिकांश सरकारें स्कूली शिक्षा में सुधार की बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाती रही, पर उनके क्रियान्वयन में वे पूरी तरह नाकामयाब रही है। इसका मूल कारण शिक्षा और चिकित्सा दोनों सरकारों की प्राथमिकता में नहीं रही और दोनों क्षेत्रों को पूरी तरह से निजी क्षेत्र के भरोसे छोड़ दिया गया है। यही कारण है कि आज दोनों क्षेत्रों ने व्यावसायिक रूप ले लिया है। शिक्षा और चिकित्सा आज व्यापार बन गया है। स्कूलों ने दुकानों का रूप ले लिया है। यही कारण है कि हमारी स्कूली शिक्षा साफ तौर पर वर्ग विभाजन और सामाजिक भेदभाव का शिकार है। देश में सम्पन्न वर्ग और शिक्षित मध्यवर्गी परिवारों के बच्चों के लिए महंगे और आलीशान स्कूल हर शहर में उपलब्ध है। वहीं दूसरी ओर गरीब व पिछड़े वर्ग के बच्चे उन सरकारी या निजी स्कूलों में धकेल दिए जाते हैं, जहाँ दिखावटी तौर पर बुनियादी ढाँचा तो खड़ा है, किन्तु पढ़ाई-लिखाई सिर्फ नाम की होती है। सुब्रह्मण्यम समिति की सिफारिशों में शिक्षा नीति को 21वीं सदी की जरूरतों के अनुरूप बनने की बात कहीं गई है, पर उसमें केन्द्र व राज्य सरकारों को देश के हर बच्चे को एक जैसी अच्छी क्वालिटी की शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार नहीं बनाया गया है। लोकतंत्र में बिना भेदभाव के सभी को उच्च स्तरीय शिक्षा मिल सके इसकी व्यवस्था होनी चाहिए। हमारी आश्रम शिक्षा व्यवस्था में राजा और रंक की औलादों के साथ में शिक्षा ग्रहण करने की रही है। ❑

(साभार : समाचार जगत)

'Education cannot be a political agenda, it's a national agenda' - *Prakash Javadekar*

Less than two months after he took charge, HRD minister Prakash Javadekar tells Akshaya Mukul & Rajeev Deshpande that plans are afoot to increase autonomy in higher education where he feels appointments should be depoliticised. Excerpts from a conversation.

You have taken charge of a ministry that has been a lightning rod for controversies. Does this bother you?

This does not bother me because I believe that education cannot be a political agenda, it is a national agenda. 27 crore students are learning from KG to PG. Almost every family is touched and everybody has an opinion. We must make education research-oriented and innovative at the higher end and promote inquisitiveness, knowledge, skill and a value system. I don't think this is confrontationist (task). On this issue, all should come together.

Have you agreed to amend RTE Act so that the date for having trained teachers is extended?

There are three or four issues here.The idea is to improve the quality of education because we have achieved expansion. In enrollment, we have reached practically everyone but unless we provide quality right from primary level, we will not achieve what is expected. Improvement of quality is essential.(At the Inter State Council), many CMs talked passionately about quality and gave an account of what they are doing. I found every state is doing something to improve quality ... everyone has realised this.

Interview

This does not bother me because I believe that education cannot be a political agenda, it is a national agenda. 27 crore students are learning from KG to PG. Almost every family is touched and everybody has an opinion. We must make education research-oriented and innovative at the higher end and promote inquisitiveness, knowledge, skill and a value system. I don't think this is confrontationist (task). On this issue, all should come together.

What is the view on no detention?

Many CMs said there has to be examination at some stage. We don't want students to feel pressured but there has to be a challenge. The church, for example, has given a recommendation to have an annual exam and detention at Classes III, V and VIII. So, there are many suggestions. People want some kind of accountability... it is a reflection of their desire to improve quality.

Are you thinking of bringing back the board exam for Class X?

No, we have not finalised that...but this is one important topic that needs to be discussed and taken to its logical end.

What have you thought about the need for funding education?

There is a trend that investment in private education is increasing at the rate of 8.5% and government education is depleting at 4.5%. This is not a healthy trend.When governments have acted proactively , students have returned to government schools. Poor people want a good education for their children and are ready to sacrifice for it.

There were some outstanding issues between the ministry and the PMO on IIM Bill and on world-class institutions. Have they

been resolved?

What we want to do is provide more freedom to institutes of higher learning providing quality education. To that end, we are one. I have no hesitation in saying that ISB, Hyderabad, it may be approved (or not) but it is approved by the world! So we must allow quality education at the higher level to grow on its own. That freedom needs to be given. So, we can't tie down these institutes. Their degrees should float on their own strength.

What about world-class institutes?

Our resolve is to have world-class institutes on the concept of autonomy and quality . Promoting more research and innovation is needed.We have survived on reverse engineering and low-cost labour. That stage is over. We are funding projects from Rs 20 lakh to Rs 20 crore...The doors of high-end labs in foreign collaboration will also be open.

How can appointments be depoliticised?

There were controversies before we took over. Actually , we have de-politicised... I can tell you we are building a robust system where merit will prevail. It is not a political subject at all. Competence, efficiency and quality will be hallmarks of all appointments. It will be a transparent process of search and selection committee. Appointments will be fair.

There have been several controversies with regard to universities, incidents like JNU. What is your view?

Every university will have challenges. But they are autonomous organisations. JNU or any central university, we don't want to interfere.

Will there be pressure on you to cater to cultural agenda, whether you call them saffronisation or issues seen as close to Sangh Parivar?

I am amused by such vocabulary .What I understand of all religions, their teachings are the same.Truth, non-violence, `bhaichara', empathy towards others or those with different abilities. These are human values. These are universal values. Our aim is to make students good human beings and good citizens.

The priorities you speak of- merit, quality , modern education -were these values hurt by the gau rakshak issues and cow vigilantism?

I think the PM has already said what needs to be said. He is our leader and he has said... he has expressed his anguish on what should not have happened and what has happened. But all should try to work within the limits of the Constitution and respect each other's freedom.

Has the unrest in universities alienated a section of youth from the party?

My party is still the most popular, we have 110 million members. All surveys point to popularity of our leader and programmes. As education minister, I think there is place for dissent on programmes and issues. Dissent is okay in a democracy. But this has to be in the four walls of the Constitution. ❑

ABRSM Conducted Workshop on the 7th Pay Review Committee recommendations

A workshop of the National Executive of Higher Education Wing of Akhil Bhartiya Rashtriya Shaikshik Mahasangh (ABRSM) was conducted on 7th August 2016 in Haryana Bhawan, New Delhi to deliberate on the possible recommendations to be submitted to the 7th Pay Review Committee constituted by the UGC on 9th June, 2016. The Pay Review Committee has started meeting the stake holders from Chennai on 19th August, and is scheduled to complete its zone wise meetings by the September end. The Higher Education Wing of the ABRSM has deliberated in detail about the possible recommendations in the interest of teachers belonging to its affiliate organizations. Many suggestions have been given by different members attending the workshop. A report has been made and is emailed to different members who had attended the workshop. The members are required to propose their suggestions on the contents of the report. Thereafter, the finalized report shall be submitted to the 7th Pay Review Committee for its consideration. We sincerely hope that the recommendations put forward in the wider interest of teachers belonging to its affiliate organization shall be well taken by the review committee and the teachers shall be benefitted in the longer span of their service.

हिंदी में विभ्रम की स्थिति

विश्व के बीस सर्वाधिक प्रगतिशील देश मातृभाषा का सहारा लेते हैं जब कि बीस सबसे पिछड़े देश किसी दूसरी भाषा पर निर्भर हैं। उनका निष्कर्ष है कि जब तक भारत अंग्रजी की डोर पकड़े रहेगा, वह शीर्ष देशों की श्रेणी में नहीं आ सकेगा। हमारा अंग्रेजी मोह न केवल देश की प्रगति में बाधक बन रहा है बल्कि एक नकलची संस्कृति (Mimic Civilization) का भी प्रसार कर रहा है। यह अत्यंत घातक है। हालात यहाँ तक पहुँच गये हैं कि जन सामान्य हिंदी भूलता सा जा रहा है। आज कस्बों और नगरों में कोई भी पढ़ा लिखा व्यक्ति अंग्रेजी की मिलावट के बिना एक भी वाक्य बोल ही नहीं सकता। विवाह आदि पारंपरिक आयोजनों के निमंत्रण पत्र तक अंग्रेजी में ही छपाये जा रहे हैं। समाचारों की भाषा स्थान-स्थान पर मिश्रित और निम्न कोटि की होती जा रही है।

❑ **डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल**

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हिंदी ने अनेकों अनछुये आयामों में प्रगति की और बाधाओं के अनेक पर्वत शिखरों को लांघा यद्यपि वर्तमान परिदृश्य अत्यंत विरोधाभाषी संकेतकों से परिपूर्ण है। एक ओर तो उसके लिये केन्द्र से सरकारी संरक्षण बढ़ता प्रतीत हो रहा है, विज्ञापनों में वह प्रतिष्ठित होती जा रही है, हिंदी समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं की पाठक संख्या ऊँची छलाँग लगा रही है, वहीं दूसरी ओर नौकरशाही में अंग्रेजी अभी भी प्रियपात्र बनी हुई है तथा नगरों एवं कस्बों में अंग्रेजी माध्यम से बच्चों को शिक्षा देने की होड़ लगी हुई है। सब कुछ अत्यन्त भ्रांतिपूर्ण है। सामान्य व्यक्ति यह समझ ही नहीं पा रहा है कि हिंदी भारतीय गणतंत्र में अपनी उचित, वैध और आधिकारिक स्थिति प्राप्त करने की दिशा में शीघ्रता से बढ़ भी रही है अथवा नहीं।

पहले सकारात्मक बातें। इस समय केन्द्र सरकार की ओर से हिंदी को देश में न्यायसंगत रूप से प्रतिष्ठित करने के हर संभव प्रयास किये जा रहे हैं और केन्द्रीय मंत्री प्रत्येक अवसर पर उसकी वकालत करते दृष्टिगत होते हैं। वर्ष 2015 के एक हिंदी दिवस आयोजन में बोलते हुए गृह मंत्री श्री राजनाथ सिंह ने सभी सरकारी अफसरों से केवल हिंदी में हस्ताक्षर करने को कहा और आश्चर्य प्रकट किया कि कुछ बुद्धिजीवी अभी भी अंग्रेजी की ढ़पली बजाते चले जा रहे हैं। अभी-अभी मानव संसाधन मंत्रालय में राज्यमंत्री पद पर नियुक्त, श्री महेन्द्रनाथ पांडे ने तो निर्देश दिये हैं कि जो फाइलें उन्हें भेजी जायें, वे केवल हिंदी में होनी चाहिये। नवंबर 2014 में हिंदी का उल्लेख करते हुये राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने सचेत किया कि सरकारी नीतियों और योजनाओं को जनता की भाषा में जनता तक पहुँचाना आवश्यक है। हिंदी का वातावरण तैयार करने के लिये भारत सरकार ने देश के सभी विद्यालयों में इस वर्ष 1-7 सितंबर तक हिंदी सप्ताह मनाने का निर्णय किया है और मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने नई शिक्षा नीति में विद्यार्थियों के लिये स्वयं अध्ययन पोर्टल का प्रस्ताव किया है, जिसकी सहायता से वे प्रौद्योगिकी संस्थानों, चिकित्सा महाविद्यालयों आदि की प्रवेश परीक्षायें मातृभाषा के माध्यम से कर सकेंगे। भारतीय प्रशासनिक सेवा, रक्षा सेवा, मुंसिफी आदि की ऐसी परीक्षाओं में हिंदी का विकल्प है तथा पटना का सुप्रसिद्ध सुपर 30 अनेकों वर्षों से विद्यार्थियों का इसी माध्यम से सफल दिग्दर्शन कर भी रहा है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली ने लगभग साढ़े सात लाख ऐसे नये शब्द तैयार किये हैं और सम्प्रति एक व्युत्पत्ति कोष तैयार करने में जुटा हुआ है जिसमें इलेक्ट्रॉनिकी से संबंधित एक लाख शब्दों को स्थान मिलेगा।

इंटरनेट की दुनिया में हिंदी ने अपूर्व प्रगति की है। अनेकों प्रतिष्ठित बैंकों, इसरो आदि कतिपय वैज्ञानिक प्रतिष्ठानों, कुछ एक नामी गिरामी व्यापारिक कंपनियों एवं सेबी आदि के वेबसाइट हिंदी में हैं। आज हिंदी के पंद्रह से भी अधिक सर्च इंजन हैं जो झटपट किसी भी अंग्रेजी वेबसाइट का अनुवाद प्रस्तुत कर देते हैं। याहू, गूगल एवं फेसबुक भी हिंदी में उपलब्ध हैं। विकीपीडिया पर एक लाख से अधिक लेख हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पढ़े जा सकते हैं। ब्लॉगों की तो बाढ़ आ चुकी है और संख्या लाखों में पहुँच रही है। एक अनुमान के अनुसार सत्तर प्रतिशत समाचारपत्रों की भाषा हिंदी है और पाठक संख्या की दृष्टि से शीर्ष स्थानों पर हिंदी अखबारों का ही कब्जा है। अनेकों शोध जर्नलों जैसे, विज्ञान परिषद अनुसंधान पत्रिका, भारतीय औद्योगिक एवं वैज्ञानिक अनुसंधान पत्रिका (सी.एस.आइ.आर) एवं लोकरुचि विज्ञान पत्रिकाओं का प्रकाशन हिंदी में हो रहा है।

यह सब हिंदी का केवल एक पक्ष - उज्ज्वल पक्ष - है यद्यपि दूसरा पक्ष निश्चय ही अवसादपूर्ण है। कार्यालयों, शिक्षा संस्थानों एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों में हिंदी के व्यवहार की केवल

औपचारिकता का निर्वाह किया जा रहा है। सभी स्थानों पर अंग्रेजी का बोलबाला है। प्रतियोगी परीक्षाओं में हिंदी माध्यम का विकल्प चुनने वालों को हीन दृष्टि से देखा जाता है। कुछ समय पूर्व सिविल सेवा की प्रारंभिक परीक्षा में लाये गये सीसैट के कारण तो ऐसे विद्यार्थयों का भविष्य अंधकारमय ही हो गया था यद्यपि 2015 से सीसैट पेपर केवल क्वालीफाइंग कर दिया गया है। अपनी भाषा के माध्यम से ही प्रवेश में सफल होने पर भी बाद में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण विद्यार्थी असंभव सी परिस्थितियों में घिर जाता है। मार्च 2012 में एम्स के ऐसे ही छात्र अनिल कुमार ने तो आत्महत्या ही कर ली थी। ऐसे और भी उदाहरण उपलब्ध हैं।

इन्हीं कारणों से हिंदी विषय में विद्यार्थियों की रुचि निरंतर घटती जा रही है। सिविल सेवा प्रवेश परीक्षा में 2009 में 42 प्रतिशत ने हिंदी माध्यम चुना था, परंतु 2014 में यह घट कर साढ़े तेरह रह गया। एक सर्वेक्षण के अनुसार प्रतिष्ठित प्रबंधन शिक्षण संस्थानों में प्रवेश लेने वाले जिस वर्ग से आते हैं उसका दायरा निरंतर छोटा होता जा रहा है। राज्य सरकारें भी अब धीरे-धीरे अंग्रेजी की ओर पलटती दिख रही हैं। हरियाणा के शिक्षा मंत्री ने इस वर्ष सदन में तीस मार्च को वक्तव्य दिया कि सरकार प्रथम कक्षा से ही फिर से अंग्रेजी की शिक्षा प्रारंभ करने पर विचार कर रही है। ब्रिटिश सरकार ने तो हरियाणा में अंग्रेजी प्रशिक्षण के लिये तकनीकी सहायता की भी पेशकश की है। प्रतिष्ठित समाचार पत्रिका ''इंडिया टुडे'' के 16 मार्च 2016 के अंक में बिहार में बढ़ते अंग्रेजी के दबदबे (सरकार समर्थित) पर विस्तृत रपट है और शीर्षक भी अत्यंत व्यंग्यात्मक यद्यपि पीड़ादायक है- ''अब अंग्रेजी बोलल जाई।'' गोआ की भाजपा सरकार भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के घोर विरोध के उपरांत भी अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों को सरकारी अनुदान रोकने के लिये किसी भी प्रकार तैयार नहीं है।

यह सब तब है जब हजार प्रयत्नों के बावजूद जनता की पकड़ अंग्रेजी पर कमजोर होती जा रही है। सर्वेक्षणों के अनुसार केन्द्रीय विद्यालयों तक में बच्चों का अंग्रेजी ज्ञान सतही ही रह जाता है जिसके कारण नौकरी मिलने में उन्हें परेशानी होती है। मई 2012 में न्यूयार्क टाइम्स के वेब पोर्टल के ब्लॉग 'इंडिया इंक' में एक अंतर्राष्ट्रीय भारतीय उद्यमी श्री मोहित चंद्रा ने लिखा कि ''अधिकांश भारतीय युवक अपने को अंग्रेजी में व्यक्त नहीं कर पाते। प्रतिदिन उन्हें जो दर्जनों मेल मिलते हैं उनमें अपने को प्रभावशाली तरीके से व्यक्त करने की योग्यता का अधिकांश में अभाव होता है।'' लेखक का अनुभव है कि विश्वविद्यालयों के प्राचार्यों तक में यह कमजोरी स्पष्ट दिखती है यद्यपि समस्त कार्य उसी भाषा में किये जाते हैं।

यह सब स्वाभाविक भी है। दूसरे की भाषा में पारंगत हो पाना आसान नहीं होता। फिर भी हम अंग्रेजी के आकर्षण से अनावश्यक रूप से बंधे रहना चाहते हैं। आज से तीन वर्ष पूर्व दिल्ली विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष (ध्यान दें) डॉ. सुमन्यु सत्पथी ने 'द हिंदू' में एक पत्र में लिखा था कि अंग्रेजी के प्रति हमारा मोह 'पैथेटिक' (अंधा मोह) है। संक्रांति सानू, राजीव मल्होत्रा एवं कार्ल क्लेमेन्स ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'भाषा नीति: द इंग्लिश मीडियम मिथ, डिसमैंटलिंग बैरियर्स टु इंडियाज ग्रोथ' में आँकड़ों के साथ स्पष्ट किया है कि विश्व के बीस सर्वाधिक प्रगतिशील देश मातृभाषा का सहारा लेते हैं जब कि बीस सबसे पिछड़े देश किसी दूसरी भाषा पर निर्भर हैं। उनका निष्कर्ष है कि जब तक भारत अंग्रेजी की डोर पकड़े रहेगा, वह शीर्ष देशों की श्रेणी में नहीं आ सकेगा। वस्तुत: यह सोचना कि हमारा अंग्रेजी ज्ञान अंतर्राष्ट्रीय संबंधों एवं व्यापार के लिये अनिवार्य है, भ्रामक है। जापान, दक्षिण कोरिया, ताइवान जैसे देश गैर अंग्रेजी भाषा भाषी हैं परंतु धड़ल्ले से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भाग लेते हैं। वहाँ की सैमसंग, टोयोटा, होंडा आदि कंपनियों की समस्त विश्व में धाक है। इजरायल एक अन्य देश है जो विज्ञान और व्यापार के क्षेत्र में स्थानीय भाषा हिब्रू को ही वरीयता देता है।

हमारा अंग्रेजी मोह न केवल देश की प्रगति में बाधक बन रहा है बल्कि एक नकलची संस्कृति (Mimic Civilization) का भी प्रसार कर रहा है। यह अत्यंत घातक है। हालात यहाँ तक पहुँच गये हैं कि जन सामान्य हिंदी भूलता सा जा रहा है। आज कस्बों और नगरों में कोई भी पढ़ा लिखा व्यक्ति अंग्रेजी की मिलावट के बिना एक भी वाक्य बोल ही नहीं सकता। विवाह आदि पारंपरिक आयोजनों के निमंत्रण पत्र तक अंग्रेजी में ही छपाये जा रहे हैं। समाचारों की भाषा स्थान-स्थान पर मिश्रित और निम्न कोटि की होती जा रही है। लेखक को अभी एक प्रतिष्ठित पत्र में छपे एक निबंध को पढ़ने का अवसर मिला जिसमें लेखक महोदय हिंदी, अंग्रेजी और उर्दू की मिली जुली कृत्रिम भाषा 'हिंग्रिज' की वकालत कर रहे थे। सच तो यह है कि कमी हमारे प्रयत्नों में हैं जबकि ईमानदार प्रयास से अपने महान पड़ोसी देशों, चीन, जापान, कोरिया की भांति हम भी विज्ञान, शिक्षा, व्यापार आदि सभी क्षेत्रों में कुछ समय में ही केवल अपनी भाषा का सहारा लेकर शीर्ष पर पहुँच सकते हैं। परंतु वर्तमान स्थिति यदि बनी रही तब तो हिंदी को कोई कच्छप अवतार ही उबार पायेगा। ❑

(पूर्व अध्यक्ष-रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)

बोली, भाषायें : अस्तित्व पर मंडराता खतरा

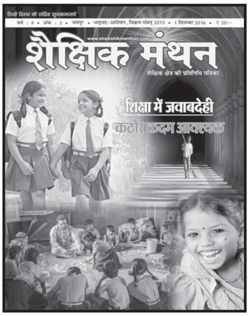

किसी भाषा के लुप्त होने से या मर जाने से महज अभिव्यक्ति का एक तरीका नहीं खत्म होता, न ही जीवन जीने के एक ढंग भर का विलोपन हो जाता है। वास्तव में दुनिया के बारे में एक मुकम्मिल समझ, धारणा, राय और अनगिनत मौलिक अहसास हमेशा हमेशा के लिए खो जाते हैं। जिससे दुनिया और समृद्ध हो सकती थी या हो सकती है इसलिए भाषा का मरना एक आदमी के मरने से भी ज्यादा पीड़ादायक है। बावजूद इसके भाषाएँ मर रही हैं और हम हैं कि रो भी नहीं रहे।

❑ **लोकमित्र**

भूमंडलीकरण, उदारीकरण, संचार तकनीक में हुई क्रांति, इस सबके चलते दुनियाभर में भाषाओं के अस्तित्व पर संकट मंडराने लगा है। जिस तरह जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संकट के चलते हर साल दुनिया से सैंकड़ों जीव प्रजातियां लुप्त हो रही हैं, ठीक उसी तरह पिछले तीन दशकों में पूरी दुनिया से 2,500 से ज्यादा भाषायें लुप्त हो गई हैं।

हालांकि यह ठीक-ठीक कह पाना थोड़ा मुश्किल है कि दुनिया में वाकई कुल कितनी भाषायें हैं मगर संयुक्त राष्ट्र संघ की पहली स्टेट ऑफ द इंडीजीनस पीपुल्स रिपोर्ट-2001 के मुताबिक विश्वभर में करीब 6,900 भाषायें हैं जिनमें से करीब 2,500 भाषायें या तो लुप्त हो चुकी हैं या इन पर विलोपन संकट के बादल मंडरा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र ने साल 2001 में इस संबंध में जब अपना पहला अध्ययन किया था, तब तक विलुप्त प्राय भाषाओं की संख्या 900 के करीब ही थी। हालांकि यूएन ने तब भी दुनिया को आगाह किया था कि भाषायें संक्रामक बीमारियों का शिकार हो रही हैं, अतः उन्हें बचाने के लिए उनके स्वास्थ्य पर अविलंब ध्यान दिया जाए तभी उन्हें बचाया जा सकता है। लेकिन तमाम आगाह के बावजूद मरती हुई भाषायें बच नहीं पा रहीं। उल्टे हकीकत यह है कि हाल के सालों में भाषाओं का स्वास्थ्य और भी बुरी तरह से गिरा है। डेढ़ दशक पहले संयुक्त राष्ट्र ने जितनी भाषाओं को बीमार रूप में चिन्हित किया था, आज तब के मुकाबले ऐसी बीमार भाषाओं की संख्या 3 गुना तक पहुँच गई है। यूनेस्को के भाषा एटलस के मुताबिक जिन देशों में भाषाओं की विलुप्ति का संकट सबसे ज्यादा मंडरा रहा है, उसमें सबसे ऊपर भारत का नाम है। भारत में 196 भाषायें या तो लुप्त हो चुकी हैं या लुप्त होने के कगार पर खड़ी हैं। भारत के बाद नंबर अमेरिका का है, जहाँ 192 भाषायें विलोपन की सीमारेखा पर खड़ी हैं या हो चुकी हैं। दुनिया में 199 ऐसी भाषायें हैं जिनके बोलने वालों की संख्या महज 10 लोग या इससे भी कम हैं। जबकि 397 ऐसी भाषायें हैं जिनको महज 50 लोग बोलते हैं। पाँच साल पहले 46 ऐसी भाषायें थी, जिनको बोलने वाला सिर्फ एक व्यक्ति बचा था, अब पता नहीं इनमें से कितनी भाषायें बची हैं। क्योंकि इनमें से एक भाषा 'बो' थी, जो कि भारत में अंडमान निकोबार द्वीप समूह के सर्वाधिक पुराने कबीलाई समाज द्वारा बोली जाती थी। भाषा वैज्ञानिकों के मुताबिक इस भाषा

बहुत किस्म की भाषायें क्यों जरूरी हैं?

कई लोग कहते हैं आखिर दुनियाभर में एक ही भाषा हो तो क्या दिक्कत है? उल्टे इनके मुताबिक इसके फायदे ही हैं। एक भाषा होने से लोगों को एक दूसरे को समझना आसान होगा और ज्ञान का प्रसार भी तेजी से और समान गति से होगा। यह बिल्कुल भ्रामक धारणा है क्योंकि दुनिया में एक भाषा हो ही नहीं सकती और होनी भी नहीं चाहिए। दरअसल कुदरत हर जगह अलग-अलग रूप में मौजूद है इसके तमाम भू दृश्य अलग-अलग होते हैं, इसकी वाणियाँ, इसके परिदृश्य, इसके मौसम, इसकी वनस्पतियाँ, इसकी जीव प्रजातियाँ, धन संपदा यहाँ तक कि आपदाएँ भी पूरी धरती में एक किस्म की नहीं होती तो फिर भाषायें ही क्यों एक जैसी हों। आखिर एक भाषा हो कैसे सकती है? हर क्षेत्र की, हर इलाके की अपनी एक मौलिक विशिष्टता होती है। ऐसे में आप एक भाषा से हर क्षेत्र, हर विशिष्टता को संबोधित नहीं कर सकते। एक भाषा का अहसास दूसरी भाषा में पूरी तरह से कभी व्यक्त नहीं होते। कुछ हद तक ऐसा तभी होता है जब आप परकाया प्रवेश कर सकें। इसीलिए दुनिया में एक भाषा नहीं बल्कि अनेक भाषायें जरूरी हैं।

का धरती में अस्तित्व हजारों साल से था। जिसको बोलने वाली अंतिम शख्स 85 वर्षीय बोआ सीनियर का कुछ साल पहले निधन हो चुका है और इसी के साथ ही इस भाषा का भी दुनिया से अस्तित्व मिट चुका है। जी हाँ, बो भाषा अब हमेशा के लिए विलुप्त हो चुकी है। किसी भाषा का विलुप्त होना वैसा ही त्रासद और कारुणिक होता है जैसा किसी व्यक्ति का मर जाना। क्योंकि वह फिर कभी लौटकर नहीं आता। अगर कोई भाषा मर गई तो फिर वह कभी जिंदा नहीं होती। बशर्ते उसका कोई बीज कहीं व्यवस्थित ढंग से सुरक्षित न रखा जाए। बो, करीब 65,000 साल पहले से बोले जाने वाली भाषा थी।

विशेषज्ञों के मुताबिक यह प्री-नियोलोथिक समय से इस्तेमाल हो रही थी। दुनिया के किसी भी और भाषा का इससे पुराना इतिहास नहीं है। वैसे भाषाओं का 70,000 साल पुराना इतिहास है जबकि आधुनिक तरीके से लिखी जाने वाली लिपि वाली भाषाओं का इतिहास महज 4 से 6 हजार साल पुराना इतिहास है। बो की प्राचीनता इस कल्पना के साथ रोमांचित करती है कि उस भाषा में इंसान का कितना प्राचीन अतीत सुरक्षित रहा होगा, जो अब हमेशा के लिए खत्म हो चुका है। बो किस तरह समूची मानव जाति के लिए जादुई विरासत थी (जिसका हम संरक्षण नहीं कर सके) इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय की एक प्रोफेसर डॉ. अवनिता अब्बी जो कि कुछ साल पहले अंडमान निकोबार द्वीप समूह में चिड़ियों के अध्ययन के लिए निवास कर रही थीं, उनके मुताबिक उन्होंने तब तक जिंदा सीनियर बोआ को चिड़ियों से बात करते हुए देखा था। डॉ. अब्बी के मुताबिक बोआ चिड़ियों से सहजता से बात करती थीं, वो दोनों एक दूसरे की भाषा समझ सकती थीं। ग्रेट अंडमानीज मूल के 10 सबसे पुराने आदिवासी समुदायों में से एक बो समुदाय की इस अंतिम सदस्या ने साल 2004 की विनाशकारी सूनामी में अपना घर बार खो चुकी थीं और कई साल कंकरीट के एक शेल्टर में स्ट्रैट द्वीप पर गुजारे। इसी तरह साल 1974 में आईसले ऑफ मैन में नेड मैडरेल की मौत के साथ ही 'मैक्स' नामक भाषा हमेशा के लिए खत्म हो गई थी तो साल 2008 में अलास्का में इसी तरह मैरी स्मिथ जींस के निधन के साथ ही 'इयाक' नामक भाषा का अस्तित्व हमेशा के लिए खत्म हो गया। यूं तो भारत में बहुत सारी भाषा और बोलियों के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है लेकिन नौ बोलियाँ तो आने वाले किसी भी दिन एक-एक कर खत्म हो सकती हैं। ये बोलियाँ हैं- दर्मिया, जाद, राजी, चिनाली, गहरी, जंघूघ, स्पिति, काँधी या मलानी और रोंगपो। इन बोलियों को अधिकतम पाँच हजार और न्यूनतम महज दो तीन सौ लोग बोलते हैं। दर्मिया, जाद और राजी तिब्बती बर्मी परिवार की भाषा है, जो उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश के कुछ इलाकों में बोली जाती है। जबकि चिनाली और गहरी को बोलने वाले दो से ढ़ाई हजार के बीच में ही हैं। पीपुल्स लिंग्युस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया के एक अध्ययन के मुताबिक भारत में भाषाई विविधता के मामले में सबसे समृद्ध प्रांत अरुणाचल प्रदेश है, जहाँ 90 से अधिक बोलियाँ बोली जाती हैं। इसके बाद महाराष्ट्र और फिर गुजरात का नंबर आता है जहाँ क्रमश: 50 और 47 भाषायें बोली जाती हैं। 47 भाषाओं के साथ उड़ीसा चौथे स्थान पर है। करीब 400 से अधिक भाषायें आदिवासी समुदायों और घुमंतू व गैर अधिसूचित समुदायों द्वारा बोली जाती हैं और सबसे ज्यादा संकट इन्हीं के द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं पर है। भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में 130 भाषाओं पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं जबकि भाषिक बहुलता की दृष्टि से सबसे उर्वर क्षेत्र यही है। जहाँ एक व्यक्ति औसतन देश में सबसे ज्यादा बोलियाँ बोलता है। पूर्वोत्तर में असम में 55, मेघालय में 31, मणिपुर में 28, नागालैंड में 17 और त्रिपुरा में 10 ऐसी भाषायें बोली जाती है जिन पर बहुत शिद्दत से संकट के बादल मंडरा रहे हैं। किसी भाषा के लुप्त होने से या मर जाने से महज अभिव्यक्ति का एक तरीका नहीं खत्म होता, न ही जीवन जीने के एक ढंग भर का विलोपन हो जाता है। वास्तव में दुनिया के बारे में एक मुकम्मिल समझ, धारणा, राय और अनगिनत मौलिक अहसास हमेशा हमेशा के लिए खो जाते हैं। जिससे दुनिया और समृद्ध हो सकती थी या हो सकती है इसलिए भाषा का मरना एक आदमी के मरने से भी ज्यादा पीड़ादायक है। बावजूद इसके भाषाएँ मर रही हैं और हम हैं कि रो भी नहीं रहे। ❑

हिन्दी दिवस पर विशेष

हिन्दी के उत्थान में रत केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

शैक्षिक मंथन पत्रिका द्वारा समय-समय पर राष्ट्रीय भावों से जुड़ाव रखने वाले संस्थानों, संगठनों या स्वायत्तशासी संस्थाओं से संवाद स्थापित कर उनके यहाँ संचालित होने वाली समस्त गतिविधियों, योजनाओं और उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त कर राष्ट्रहित में उनकी भूमिका के सराहनीय प्रयासों से अवगत होकर अपने पाठकों से साझा करती है। इस अंक में पत्रिका के उपसम्पादक भरत शर्मा द्वारा जुटायी गई विषयवस्तु के साथ प्रस्तुत है केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा का एक परिचय-

संस्थान परिचय

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के उच्चतर शिक्षा विभाग द्वारा 1961 ई. में स्थापित स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा संचालित अखिल भारतीय स्तर की एक स्वायत्तशासी शैक्षिक संस्था है।

संस्थान का मुख्यालय आगरा में स्थित है। इसके आठ केंद्र इन नगरों में सक्रिय हैं, दिल्ली (1970), हैदराबाद (1976), गुवाहाटी (1978), शिलांग (1987), मैसूर (1988), दीमापुर (2003), भुवनेश्वर (2003), तथा अहमदाबाद (2006) हिंदी भारत की एकता की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। आधुनिक भारत के लिए राष्ट्रीय एकता सबसे बड़ा मूल्य है, जो केंद्रीय हिंदी संस्थान के हर कार्यक्रम के मूल में विद्यमान है। इसी को ध्यान में रखकर केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल ने अपने सहमति पत्र (मेमोरेडम) में कुछ संकल्प एवं कार्य निर्धारित किए हैं, जो इस प्रकार है,

केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल कार्य

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुपालन में अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिंदी का विकास करते हुए ऐसे पाठ्यक्रम प्रस्तुत, संचालित एवं उपलब्ध कराना जो इस भाषा के विकास और प्रसार की दृष्टि से उपयोगी हों।
2. विभिन्न स्तरों पर हिंदी शिक्षण की गुणवत्ता सुधारना,हिंदी शिक्षकों को प्रशिक्षित करना, हिंदी भाषा और साहित्य के उच्चतर अध्ययन का प्रबंध करना तथा हिंदी के साथ विभिन्न भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहित करना और हिंदी भाषा एवं शिक्षण विषयक विविध अनुसंधान कार्यों का आयोजन करना।
3. विद्यार्थियों को रहने के लिए छात्रावासों का निर्माण, निरीक्षण एवं नियंत्रण करना।
4. अपने विभिन्न पाठ्यक्रमों में विद्यार्थियों की परीक्षा लेना तथा उपाधि प्रदान करना।
5. विभिन्न स्तर की पाठ्य पुस्तकें और अनुसंधान पुस्तकें तैयार करना और प्रकाशित करना।
6. संस्थान के उद्देश्यों के अनुपालन में आवश्यकतानुसार पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन कराना।
7. संस्थान की प्रकृति एवं उद्देश्यों के अनुरूप अन्य उन संस्थाओं के साथ जुड़ना या सदस्यता ग्रहण करना या सहयोग करना या सम्मिलित होना जिनके उद्देश्य संस्थान के उद्देश्यों से मिलते -जुलते हों।
8. समय-समय पर नियमानुसार अध्येतावृति (फैलोशिप), छात्रवृत्ति और पुरस्कार, सम्मान की स्थापना कर हिंदी से संबंधित कार्यों को प्रोत्साहित करना आदि।

संस्थान के कार्यक्षेत्र

केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल के उपर्युक्त सकंल्पों, उद्देश्यों एवं कार्यों को संपन्न करने के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान ने अपनी गतिविधियों का निरंतर विस्तार किया है, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. शिक्षणपरक कार्यक्रम

(क) **विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षण** - भारत सरकार की (विदेशों में) हिंदी प्रचार-प्रसार योजना एवं सांस्कृतिक आदान -प्रदान के अंतर्गत चुने गये विदेशी छात्रों के लिए मुख्यालय आगरा और दिल्ली केंद्र के अंतर्गत निम्नलिखित पाठ्यक्रम आयोजित किए जाते हैं-

(1) हिंदी भाषा दक्षता प्रमाण पत्र 100
(2) हिंदी भाषा दक्षता डिप्लोमा 200
(3) हिंदी भाषा दक्षता उच्च डिप्लोमा 300
(4) स्नातकोत्तर हिंदी डिप्लोमा 400

दिल्ली केंद्र के अंतर्गत उपर्युक्त पाठ्यक्रमों (1 से 3 तक) का संचालन स्ववित्त पाठ्यक्रम योजना के अंतर्गत किया जाता है। ये पाठ्यक्रम आईसीसीआर के माध्यम से कोलंबो (श्रीलंका) में भी संचालित किए जाते हैं।

(ख) सांध्यकालीन पाठयक्रम (स्व-वित्तपोषित)- संस्थान के मुख्यालय आगरा और दिल्ली केंद्र के अंतर्गत निम्नलिखित पाठ्यक्रम आयोजित किए जाते हैं-

(1) परा- स्नातकोत्तर अनुप्रयुक्त हिंदी भाषाविज्ञान डिप्लोमा
(2) स्नातकोत्तर अनुवाद सिद्धांत एवं व्यवहार डिप्लोमा
(3) स्नातकोत्तर जनसंचार एवं पत्रकारिता डिप्लोमा

2. शिक्षक -प्रशिक्षण परक कार्यक्रम

(क) **हिंदीतर राज्यों के विद्यार्थियों के लिए अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम** - हिंदीतर भाषी क्षेत्रों के हिंदी शिक्षकों और हिंदी सीखने के लिए इच्छुक विद्यार्थियों के लिए मुख्यालय के अध्यापक शिक्षा विभाग के अंतर्गत कक्षा-शिक्षण माध्यम से नियमित एकवर्षीय तथा द्विवर्षीय प्रशिक्षणपरक पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं, जो इस प्रकार हैं-

(1) हिंदी शिक्षण निष्णात-एम. एड. स्तरीय पाठ्यक्रम (आगरा) (द्विवर्षीय)
(2) हिंदी शिक्षण पारंगत -बी.एड. स्तरीय पाठ्यक्रम (आगरा) (द्विवर्षीय)
(3) हिंदी शिक्षण प्रवीण - बी.टी.सी./ डी.एल.एड स्तरीय पाठ्यक्रम (आगरा

, दीमापुर) (द्विवर्षीय)

(4) त्रिवर्षीय हिंदी शिक्षण डिप्लोमा -हिंदी शिक्षण -प्रशिक्षण संस्थान, दीमापुर (नागालैंड) त्रिवर्षीय हिंदी शिक्षण डिप्लोमा पाठ्यक्रम के अंतर्गत प्रथम और द्वितीय वर्ष का अध्ययन पूरा कर लेने के बाद वहाँ के विद्यार्थियों के लिए तृतीय वर्ष का शिक्षण कार्य केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा में होता है।

(5) विशेष गहन हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण पाठ्यक्रम (आगरा, दीमापुर) यह पाठ्यक्रम भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों के अप्रशिक्षित हिंदी अध्यापकों के लिए है ।

(ख) दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम (स्ववित्तपोषित)

हिंदीतर भाषी राज्यों के सेवारत हिंदी अध्यापकों के लिए दूरस्थ अध्यापक शिक्षा विभाग के अतंर्गत दो वर्ष की अवधि का हिंदी शिक्षण पारंगत (पत्राचार-सह-सपर्क पाठ्यक्रम) का संचालन मुख्यालय आगरा से किया जाता है।

3. नवीकरण एवं संवर्द्धनात्मक कार्यक्रम

हिंदीतर राज्यों के अध्यापकों के लिए केंद्रों द्वारा नवीकरण कार्यक्रम चलाए जाते है। इसका मार्गदर्शन नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग तथा शैक्षणिक समन्वयक कार्यालय करता है।

नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग गुजरात, कर्नाटक, असम, मिजोरम और मणिपुर राज्य के हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालयों के छात्रों के लिए 30 दिवसीय भाषा संवर्द्धनात्मक कार्यक्रम तथा सिक्किम राज्य के लिए 21 दिवसीय नवीकरण कार्यक्रम आगरा में चलाता है ।

राज्य सरकारों द्वारा प्रतिनियुक्त अध्यापक राज्यानुसार केंद्रीय हिंदी संस्थान के निम्नलिखित विवरण के अनुसार केंद्रों में नवीकरण कार्यक्रम में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

- दिल्ली केंद्र -पंजाब, जम्मू- कश्मीर एवं हिमाचल (आदिवासी क्षेत्र) राज्यों के हिंदी अध्यापकों के लिए
- हैदराबाद केंद्र -आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, गोवा, महाराष्ट्र एवं केंद्र शासित पांडिचेरी एवं अंडमान निकोबार द्वीप समूह के हिंदी अध्यापकों के लिए
- गुवाहटी केंद्र- असम, अरुणाचल प्रदेश एवं सिक्किम के हिंदी अध्यापकों के लिए
- शिलांग केंद्र- मेघालय एवं मिजोरम के हिंदी अध्यापकों के लिए
- मैसूर केंद्र- कर्नाटक, केरल और केंद्र शासित लक्षद्वीप के हिंदी अध्यापकों के लिए
- दीमापुर केंद्र- नागालैंड, मणिपुर के हिंदी अध्यापकों के लिए
- भुवनेश्वर केंद्र - उड़ीसा, छत्तीसगढ़ के हिंदी अध्यापकों के लिए
- अहमदाबाद केंद्र-गुजरात,दमन दीव तथा दादर और नागर हवेली के अध्यापकों के लिए

4. अनुसंधानपरक कार्यक्रम

केंद्रीय हिंदी संस्थान का एक प्रमुख लक्ष्य निम्नलिखित क्षेत्रों में अनुसंधान कार्यों को निरंतर अग्रसर करना है।

(1) हिंदी शिक्षण की अधुनातन प्रविधियों के विकास के लिए शोध

(2) हिंदी भाषा और अन्य भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन

(3) हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में आधारभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान

(4) हिंदी भाषा के अधुनिकीकरण और भाषा -प्रौद्योगिकी के विकास के उद्देश्य से अनुसंधान

(5) हिंदी का समाज भाषावैज्ञानिक सर्वेक्षण और अध्ययन

(6) प्रयोजनपरक हिंदी से संबंधित शोध कार्य- उपुर्यक्त अनुसंधानपरक कार्यों के दौरान द्वितीय भाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के लिए उपयोगी शिक्षण सामग्री का निर्माण भी संस्थान द्वारा किया जाता है।

5. शिक्षण सामग्री निर्माण और भाषा विकास -

केंद्रीय हिंदी संस्थान शिक्षण-प्रशिक्षण और अनुसंधान के अलावा हिंदीतर राज्यों के विद्यार्थियों के लिए हिंदी पाठ्य-पुस्तकों, कोश और आधुनिक तकनीक का प्रयोग करते हुए हिंदी शिक्षण के लिए उपयोगी सामग्री का निर्माण करता है।

(1) हिंदीतर राज्यों और जनजाति क्षेत्र के विद्यालयों के लिए हिंदी शिक्षण सामग्री निर्माण

(2) हिंदीतर राज्यों के लिए हिंदीके व्यतिरेकी व्याकरण एवं द्विभाषी अध्येता कोशों का निर्माण

(3)विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण पाठ्यपुस्तकों का निर्माण

(4) कंप्यूटर साधित हिंदी भाषा शिक्षण सामग्री का निर्माण

(5) दृश्य -श्रव्य माध्यमों से हिंदी शिक्षण संबंधी पाठ्य सामग्री का निर्माण

(6) हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के द्विभाषी /त्रिभाषी शब्दकोशों का निर्माण

(क) प्रकाशन

संस्थान द्वारा हिंदी भाषा एवं साहित्य, भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन, भाषा एवं साहित्य शिक्षण, कोश विज्ञान, द्विभाषी कोश आदि से संबद्ध विभिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन किया गया है ।अब तक 200 से अधिक पुस्तकें संस्थान द्वारा प्रकाशित की जा चुकी है। साथ ही विभिन्न स्तरों एवं अनेक प्रयोजनों की पाठ्यपुस्तकों तथा अध्यापक निर्देशिकाओं का भी प्रकाशन किया गया है।

संस्थान द्वारा निम्नलिखित पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जा रहा है।

1. गवेषणा-अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान हिंदी शिक्षण और आलोचना की त्रैमासिक पत्रिका (अब तक 105 अंक प्रकाशित)
2. मीडिया- दिल्ली केंद्र की त्रैमासिक पत्रिका (2006 से प्रकाशन)
3. समन्वय पूर्वोत्तर-गुवाहाटी, शिलांग एवं दीमापुर केंद्रों की संयुक्त वार्षिक

पत्रिका (अब तक 22 अंक प्रकाशित)

4. समन्वय दक्षिणायन- हैदराबाद और मैसूर केंद्र की संयुक्त वार्षिक पत्रिका (प्रस्तावित)।
5. संस्थान का त्रैमासिक बुलेटिन है- संस्थान समाचार
6. इनके अलावा विभिन्न विभागों के विद्यार्थियों की पत्रिकाएं हिंदी विश्व भारती और समन्वय का प्रकाशन वार्षिक रूप से होता है।

(ख) प्रमुख परियोजनाएँ

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, के अनुसंधान एवं भाषा विकास विभाग एवं सूचना एवं भाषा प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा संचालित कुछ प्रमुख परियोजनाएँ इस प्रकार है-

1. **हिंदी कॉर्पोरा परियोजना** - केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा एवं भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी की प्रकाशित पुस्तकों के माध्यम से हिंदी कॉर्पोरा परियोजना के अंतर्गत तीन करोड़ से ऊपर शब्दों का संकलन किया जा चुका है। अब तक संकलित सामग्री का ऑटोमेटिक व्याकरणिक कोटि निर्धारण किया जा रहा है। इस संकलित सामग्री का उपयोग करते हुए संस्थान द्वारा हिंदी का आधारभूत शब्दावली (2008) और हिंदी क्रिया विशेषण शब्दकोश (2009) का निर्माण किया जा चुका है वर्तमान में इस परियोजना के अतंर्गत शिक्षार्थी केंद्रित विभिन्न प्रकार के कोशों का निर्माण किया जा रहा है।
2. **भाषा** -साहित्य सी.डी. निर्माण परियोजना - हिंदी के हिंदी शिक्षार्थियों और हिंदी प्रेमी आम जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से इस परियोजना के अंतर्गत साहित्यकारों के जीवन और कृतित्व पर आधारित ऑडियो, वीडियो, के साथ-साथ हिंदी भाषाशिक्षण के मल्टीमीडिया कार्यक्रम तैयार किए जा रहे हैं। परियोजना के अंतर्गत अभी तक सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, अज्ञेय, त्रिलोचन और फिराक गोरखपुरी की रचनाओं पर आधारित ऑडियो सी.डी. तैयार की जा चुकी है। महादेवी वर्मा के जीवन और कृतित्व पर आधारित एक वीडियो वृत्तचित्र पंथ होने दो अपरचित का भी निर्माण किया गया है और नजीर अकराबादी के जीवन और कृतित्व पर आधारित एक अन्य वीडियो वृत्तिचित्र निर्माण के अंतिम चरण में है।
3. **हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना** -हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना के अंतर्गत हिंदी परिवार की 48 लोकभाषाओं के 48 खंडों में शब्द कोशों का निर्माण होना है। इस योजना के प्रथम चरण के अंतर्गत भोजपुरी, ब्रजभाषा, राजस्थानी, छत्तीसगढी, बुंदेली, अवधी व मालची कांगड़ी, गढवाली, मगही और हरियाणवी लोकभाषाओं के त्रिभाषी, यूनिकोडित डिजिटल लोक शब्दकोशों का निर्माण कार्य किया जा रहा है।
4. **लघु हिंदी विश्वकोश परियोजना** - लघु हिंदी विश्वकोश परियोजना के अंतर्गत विभिन्न विषय क्षेत्रों से संबंधित लगभग 15000 संक्षिप्त प्रविष्टियों वाले छात्रोपयोगी विश्वकोश का निर्माण किया जा रहा है।

6. विस्तारपरक कार्यक्रम

(1) संस्थानके मुख्यालय सहित विभिन्न केंद्रों में संर्पक, समन्वयन और वैचारिक आदान-प्रदान के उद्देश्य से विशेष विस्तार व्याख्यान एवं कार्यशालाओं का आयोजन करना।
(2) संस्थान के विभिन्न केंद्रों और मुख्यालय में हर साल अखिल भारतीय संवाद एवं व्यापक भाषाई सांस्कृतिक आदान-प्रदान के उद्देश्य से प्रतिवर्ष भाषाविज्ञान , हिंदी साहित्य, हिंदी शिक्षण, पत्रकारिता, भाषा प्रौद्योगिकी, मीडिया आदि पर राष्ट्रीय संगोष्ठियों का आयोजन करना।
(3) हिंदीतर भाषी राज्यों के हिंदी शिक्षण -प्रशिक्षण महाविद्यालयों एवं प्रचार संस्थाओं के छात्राध्यापकों के लिए प्रतिवर्ष के लिए अखिल भारतीय हिंदी वाद-विवाद निबंध लेखन एवं कविता आवृत्ति प्रतियोगिताओं का आयोजन करना।
(4) विद्यार्थियों के लिए सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं का आयोजन , प्रादेशिक एवं विश्व के विभिन्न देशों के लोक संगीत, नृत्य, एवं लघु नाटक प्रतियोगिताओं का आयोजन।
(5) संस्थान मुख्यालय आगरा एवं इसके आठ केंद्रों द्वारा वहाँ के क्षेत्रीय महाविद्यालयों के सहयोग से लघु बजटीय संगोष्ठियों का आयोजन करना।
(6) स्थानीय नगर राजसभा कार्यान्वयन समिति एवं हिंदी शिक्षण संस्थाओं का सहयोग करना।

7. हिंदी सेवी सम्मान योजना

यह योजना सन् 1989 में प्रारंभ हुई। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के उन्नयन, विकास एवं प्रचार-प्रसार हेतु उत्कृष्ट कार्यों के लिए हर वर्ष 14 समर्पित विद्वानों को संस्थान द्वारा एक लाख रूपए, शॉल तथा प्रशस्ति पत्र प्रदान कर सम्मानित /पुरस्कृत किया जाता है। इन पुरस्कारों का विवरण निम्न प्रकार है-

(1) गंगाशरण सिंह पुरस्कार
(2) गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार
(3) आत्माराम पुरस्कार
(4) सुब्रह्मण्य भारती पुरस्कार
(5) महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार
(6) डॉ. जार्ज ग्रियर्सन पुरस्कार
(7) पद्मभूषण डॉ. मोटरि सत्यनारायण पुरस्कार

इनके अलावा माननीय मानव संसाधन विकास मंत्री, भारत सरकार एवं अध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा सरदार बल्लभ भाई पटेल पुरस्कार (हिंदी

के माध्यम से सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए)

दीनदयाल उपाध्याय पुरस्कार (मानविकी, कला, संस्कृति एवं विचार की भारतीय चिंतन परंपरा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए)एवं विवेकानंद युवा लेखन पुरस्कार (भारतीय मूल्य दृष्टि के आलोक में सराहनीय योगदान के लिए) की घोषणा की गई है। इस प्रकार प्रतिवर्ष 17 विद्वानों को सम्मानित व पुरस्कृत किया जाएगा।

8. पुस्तकालय

संस्थान का पुस्तकालय भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषा शिक्षण और हिंदी साहित्य के विभिन्न विषयों की पुस्तकों के विशेषीकृत संग्रह की दृष्टि से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक है। इसमें लगभग 71000 पुस्तकें व 1900 सजिल्द पत्रिकाएँ उपलब्ध हैं और लगभग 79 पत्रिकाएँ (शोध एवं अन्य) पुस्तकालय में हर महीने आती है। इसका नया संदर्भ प्रभाग अद्वितीय है। कवि/लेखकों की जन्म जयंती पर साहित्यिक परिचर्चा और सप्ताहव्यापी पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया जाता है। समस्त केंद्रों पर भी पुस्तकालय एवं वाचनालय की अच्छी व्यवस्था है।

9. प्रबंधन

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा 1961 ई. में स्थापित स्वायत संगठन है जो केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा संचालित है। केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल के अध्यक्ष मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के मंत्री महोदय होते हैं। इसके एक उपाध्यक्ष एवं सचिव होते है। संस्थान का निर्देशक ही केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल का पदेन सचिव होता है ।वही संस्थान का प्रमुख होता है। इनके अधीन विभिन्न विभागाध्यक्ष, केंद्रों के क्षेत्रीय निदेशक, कुलसचिव, उप कुलसचिव, लेखाधिकारी, प्रशासनिक अधिकारी (प्रशासन एवं शैक्षिक) एवं पुस्तकालय अधीक्षक होते हैं जिनके माध्यम से प्रशासन एवं शैक्षिक कार्यालय संपन्न होते हैं। इन सबके साथ पर्याप्त शैक्षिक एवं प्रशासनिक कर्मचारी नियुक्त है।

संस्थान परिसर

केंद्रीय हिंदी संस्थान मुख्यालय आगरा का मुख्य भवन, गाँधी भवन, मोटूरि सत्यनारायण छात्रावास, प्रेमचंद छात्रावास, महादेवी वर्मा अंतरराष्ट्रीय महिला छात्रावास एंव सुभद्रा कुमारी चौहान छात्रावास संस्थान परिसर में सुचारू व्यवस्था के साथ स्थित हैं। इसके अलावा अतिथि गृह और संस्थान कर्मियों के लिए आवासीय परिसर की व्यवस्था है। मुख्यालय के अलावा इस समय दिल्ली व मैसूर केंद्र भी अपने नवनिर्मित भवनों में संचालित किए जा रहे हैं।

संस्थान से संबद्ध प्रशिक्षण महाविद्यालय

हिंदी शिक्षण के स्तर को समुन्नत करने तथा पाठ्यक्रम में एकरूपता लाने के उद्देश्य से अहिंदी भाषी राज्यों के उत्तर गुवाहाटी (असम), आइजोल(मिजोरम), मैसूर (कर्नाटक), दीमापुर(नागालैंड) के राजकीय हिंदी शिक्षक - प्रशिक्षण महाविद्यालयों को संस्थान से संबद्ध किया गया है। इन महाविद्यालयों में संस्थान के पाठ्यक्रम का उपयोग किया जाता है।

भावी योजनाएँ

- नये पाठ्यक्रमों की प्रस्तुति: संस्थान मुख्यालय और विभिन्न केंद्रों पर कुछ नये दक्षतापरक पाठ्यक्रम आरंभ करने की कार्य योजना शिक्षण पद्धति एवं प्रविधि की गुणवत्ता, नये तकनीकी संसाधनों के उपयोग के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास की योजना संस्थान के विविध पाठ्यक्रमों में विद्यार्थियों और प्रशिक्षणार्थियों की संख्या और देश भर में संस्थान का प्रसार क्षेत्र बढाने की योजना लागू
- विश्व के कुछ देशों में हिंदी पीठ तथा साथ ही भारत के विभिन्न राज्यों के कुछ शहरों में केंद्र स्थापित करने की योजना
- लघु हिंदी विश्वकोश निर्माण की परियोजना पूर्णता की ओर
- हिंदी की 48 लोकभाषाओं (बोलियों) पर डिजिटल त्रिभाषी शब्दकोश निर्माण का कार्य लगातार प्रगति पर
- संस्थान के सभी प्रमुख पाठ्यक्रमों में आवश्यकतानुसार अनिवार्य हिंदी कंप्यूटर प्रशिक्षण का समावेश । अधुनातन तकनीक पर आधारित हिंदी शिक्षण एवं ऑनलाइन हिंदी शिक्षण की योजना पर कार्य शुरू
- संस्थान के विभिन्न केंद्रों में भाषा प्रयोगशाला स्थापित करने की योजना
- मुख्यालय आगरा में एक बहु-उद्देशीय प्रेक्षागृह का निर्माण कार्य पूर्णता की ओर
- हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं लोकप्रियता के लिए शैक्षिक ऑडियो-विजुअल कार्यक्रम, लघु फिल्म निर्माण, संगोष्ठियों , कार्यशालाओं और शैक्षिक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का लगातार आयोजन
- अधुनातन स्मार्ट क्लास रूम की स्थापना
- प्रशासनिक भवन के निर्माण की योजना
- भारतीय ज्ञान-विज्ञान केंद्र के लिए भवन का निर्माण
- संस्थान के शिलांग एवं हैदराबाद केंद्र में भवन निर्माण का कार्य प्रारंभ
- आवासीय परिसर में बच्चों के लिए फुलवारी उद्यान का निर्माण
- संस्थान के अकादमिक कार्यक्रमों का विदेशों में विस्तार : अंतर्राष्ट्रीय जगत में संस्थान का विदेशी पाठ्यक्रम की लोकप्रियता को देखते हुए भारतीय सांस्कृतिक केंद्र कोलंबो (श्रीलंका) में विदेशी पाठ्यक्रम का केंद्र वर्ष 2007-08 से प्रारम्भ हुआ एवं नांगरहार विश्वविद्यालय, जलालाबाद (अफगानिस्तान) में स्नातक स्तर का पाठ्यक्रम तैयार किया गया। एक उच्चस्तरीय शैक्षिक समिति इन पाठ्यक्रमों को बहुआयामी दृष्टि से अद्यतन करने का कार्य कर रही है। विश्व भर में भारतीय सांस्कृतिक केंद्र के कुल 36 केंद्रों पर संस्थान की गतिविधियों को प्रारंभ करने पर विचार शुरू किया है।❑

जन्म दिवस पर विशेष

निष्काम शिक्षाविद् - डॉ. एस. राधाकृष्णन

❑ बजरंग प्रसाद मजेजी

सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन ने व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व के माध्यम से एक शिक्षक की आदर्श छवि हमारे सामने प्रस्तुत की है। जीवन पर्यन्त जिन आदर्शों को सर्वोपरि रखकर, एक उत्कृष्ट जीवन शैली हमारे सामने रखी, आज का शिक्षक उससे प्रेरणा लेकर अवश्य ही देश व समाज की उन्नति में सहायक हो सकता है। वे व्यक्तिगत उन्नति के साथ-साथ देश की उन्नति में भी सहायक बने और सम्पूर्ण विश्व को अपनी विद्वता से जीवन की वह दिशा दिखा सके, जो कि वास्तव में एक आचार्य, एक शिक्षक का कार्य था। हमारे आज के शिक्षक वर्ग को अवश्य ही उनके व्यक्तित्त्व के इस पहलू से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए कि व्यावसायिक निष्ठा तथा व्यावसायिक सफलता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के अभाव में दूसरे की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। एक शिक्षक तभी सफल हो सकता है, जब वह उससे जुड़े उत्तरदायित्वों के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ हो। शिक्षक का प्रेमभाव तथा कर्त्तव्यनिष्ठा विद्यार्थियों के प्रति भी होनी चाहिए। उनका कहना था कि - 'शिक्षा जीवन दायिनी होती है, विमुक्तकारी होती है, यह आत्मिक जड़ता को तोड़ती है, आत्मिक नियंत्रण सिखाती है और करुणा का विस्तार करती है। यदि वह ऐसा नहीं करती है तो वह शिक्षा नहीं है, चाहे और कुछ भी क्यों नहीं हो।' वे ज्ञान को सम्पूर्ण इकाई मानते थे। वे सांस्कृतिक विरासत को कायम रखकर, परिवर्तन के पक्षधर थे। गहन आध्यात्मिक होते हुए भी विज्ञान के समर्थक थे। डॉ. राधाकृष्णन एक अध्यापक से दार्शनिक, स्वतंत्रता सेनानी, शिक्षाविद् तथा एक राजनेता के रूप में महान विभूतियों में अनन्य कहे जा सकते हैं। उनका कृतित्त्व एवं व्यक्तित्त्व शिक्षकों के लिए प्रेरणास्पद है।

डॉ. राधाकृष्णन का कहना था कि ''शिक्षा जीविकोपार्जन का केवल एक साधन मात्र नहीं है, न ही यह विचारों का भण्डार है। यह तो आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश की दीक्षा, सत्य की खोज और आत्मा का प्रशिक्षण है। कोरे किताबी ज्ञान को भार स्वरूप बताते हुए उन्होंने कहा कि शिक्षा को आचार-व्यवहार से जोड़ा जाए। जो भी ज्ञान दिया जाए वह दिव्य हो। बालक के दिल और दिमाग को आलोकित करने वाला हो।'' उनके अनुसार शिक्षा का लक्ष्य आत्म-परिष्कार, दृष्टि का विकास, संकल्प शक्ति का विकास, लोकतंत्र का संरक्षण तथा विश्वबन्धुत्त्व की भावना का प्रसारण होना चाहिए। डॉ. राधाकृष्णन का मानना था कि ''जहाँ जहाँ शिक्षा का प्रसार हुआ है, वहाँ-वहाँ सामाजिक बुराइयाँ भी दूर हुई है

सामान्य परिवार से सर्वोच्च पद की प्रेरक यात्रा

सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन का जन्म आंध्र प्रदेश के एक ग्राम चित्तूर के तिरूत्तनि में 5 सितम्बर 1888 को धार्मिक प्रवृत्ति वाले ब्राह्मण पिता सर्वपल्ली वीर स्वामी तथा माता सीताम्मा के यहाँ हुआ। इनके पिता तथा पूर्वज पहले सर्वपल्ली गाँव के निवासी थे। वहाँ की परम्परा के अनुसार इनके नाम के साथ सर्वपल्ली जुड़ता था। वे 12 वर्ष की आयु में बेलोर के वूर्हिस कॉलेज में भर्ती हुये। चार वर्ष बाद मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करने गये। यहाँ से उन्होंने स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। बी.ए. स्तर की एक वाद-विवाद प्रतियोगिता में उन्होंने मात्र चार मिनिट के अन्दर हिन्दू संस्कृति के विषय में ऐसे तर्क प्रस्तुत किये कि विद्वान अंग्रेज निर्णायक से पुरस्कार प्राप्त किया, प्रशंसा भी मिली। एम.ए. की उपाधि को प्राप्त करने के लिए उन्होंने 'एथिक्स ऑफ वेदान्त' (Ethics of Vedant) विषय पर जो शोध निबन्ध लिखा उसकी

सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन

(5 सितम्बर 1888 - 16 अप्रैल 1975)

प्रशंसा में उनके निर्देशक प्रो. ह्यांग ने लिखा है कि - ''छात्र मुख्य-मुख्य दार्शनिक-समस्याओं को भली भांति समझता है और उसको हृदयंगम कर लिया है इसके अतिरिक्त उसका अंग्रेजी भाषा पर अधिकार विलक्षण है।'' एम.ए. की उपाधि के पश्चात् उन्होंने एक शिक्षक का पद स्वीकार करना सर्वाधिक उपयुक्त समझा।

शिक्षक के रूप में उन्होंने मद्रास प्रेसीडेंसी कॉलेज में अप्रेल 1909 में दर्शन-शास्त्र के प्राध्यापक से अपना शिक्षण कार्य प्रारंभ किया। यहाँ 1916 तक कार्यरत रहे। इसी बीच में इन्होंने वैदिक साहित्य, भारतीय वाङ्मय, विविध आचार्यों द्वारा प्रणीत ब्रह्मसूत्र भाष्य, बौद्ध व जैन धर्म के अध्ययन के अतिरिक्त पाश्चात्य विचारक प्लेटो, कांट, ब्रेडले, प्लोटिनस की कृतियों का भी अध्ययन किया। इनकी 1918 एवं 1920 में दो कृतियाँ प्रकाशित हुई- 1. द फिलासफी ऑफ रवीन्द्रनाथ टैगोर, 2. द रीजन ऑफ रिलीजन इन कन्टेम्परेरी फिलॉसफी। इन पुस्तकों के प्रकाशन से इनके पूर्वी और पश्चिमी दर्शन के प्रति गहरी पेठ की जानकारी विदेशों तक हुई। उन्हें 1926 में हैदराबाद विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र सम्मेलन में आमंत्रित किया गया। जहाँ देश-विदेश के कई दार्शनिक थे। इनके व्याख्यान से सभी प्रभावित हुए। इन्हें 1926 में ही इनकी कृति 'दि हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ' पर व्याख्यान देने के लिए ऑक्सफोर्ड के मेनचेस्टर कॉलेज में विशेष आग्रहपूर्वक आमंत्रित किया गया। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के व्याख्यान सुनकर बुद्धिजीवियों ने एकमत से स्वीकार किया कि प्रो. राधाकृष्णन का ज्ञान अत्यन्त तलस्पर्शी तथा विस्तृत है। इन्हें 1931 में आन्ध्रप्रदेश के वाल्टेयर स्थित आन्ध्र विश्वविद्यालय का उपकुलपति नियुक्त किया। इन्हें 1936 में आक्सफोर्ड में पूर्वधर्मों एवं आचार शास्त्र के स्पाडिल्डन प्रोफेसर नियुक्त किया गया। इन्हें 1939 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी का उपकुलपति बनाया गया, जहाँ 1948 तक इस पद को गौरवान्वित किया। इस मध्य में यूनेस्को में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता के रूप में 1946 से 1950 तक कार्य किया तथा 1952 में उसके अध्यक्ष चुने गए। वे 1949 से 1952 तक सोवियत रूस में भारत के राजदूत रहे तथा 1952 में भारतीय गणतंत्र के पहले आम चुनाव में उपराष्ट्रपति पद पर निर्वाचित हुए। 1957 में पुनः भारत के उपराष्ट्रपति रहे। इस मध्य 18 जून 1956 को मास्को विश्वविद्यालय का सम्मानित प्रोफेसर पद प्रदान किया गया। भारतीय गणतंत्र के 1962 में इन्हें राष्ट्रपति चुना गया। विश्वभर में उनका अभिनन्दन हुआ। बर्ट्रेण्ड रसल ने कहा- ''आज फिलॉसफी सम्मानित हुई है।'' प्लेटो समर्थकों ने कहा- आज प्लेटो का स्वप्न पूरा हुआ। अमेरिका के प्राच्यविद् नार्मन ब्राउन ने कहा कि- ''सत्येनोत्थिता भूमिः'' अर्थात् यह भूमि सत्य से ही स्थिर है और दृढ़ बनी हुई है। इन्हें 11 जुलाई 1962 में ब्रिट्रीश एकेडेमी का सम्मानित फेलो चुना गया। सन् 1967 में इन्हें भारत का सर्वोच्च सम्मान 'भारत रत्न' से विभूषित किया गया।

शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

डॉ. राधाकृष्णन का कहना था कि ''शिक्षा जीविकोपार्जन का केवल एक साधन मात्र नहीं है, न ही यह विचारों का भण्डार है। यह तो आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश की दीक्षा, सत्य की खोज और आत्मा का प्रशिक्षण है। कोरे किताबी ज्ञान को भार स्वरूप बताते हुए उन्होंने कहा कि शिक्षा को आचार-व्यवहार से जोड़ा जाए। जो भी ज्ञान दिया जाए वह दिव्य हो। बालक के दिल और दिमाग को आलोकित करने वाला हो।'' उनके अनुसार शिक्षा का लक्ष्य आत्म-परिष्कार, दृष्टि का विकास, संकल्प शक्ति का विकास, लोकतंत्र का संरक्षण तथा विश्वबन्धुत्त्व की भावना का प्रसारण होना चाहिए। डॉ. राधाकृष्णन का मानना था कि ''जहाँ जहाँ शिक्षा का प्रसार हुआ है, वहाँ-वहाँ सामाजिक बुराइयाँ भी दूर हुई है जैसे पर्दाप्रथा, सतीप्रथा, बाल विवाह, छूआछूत आदि। शिक्षा ही व्यक्ति के आचार व्यवहार में निखार लाती है। वे शिक्षा को सत्य की खोज का मार्ग बताते थे।''

डॉ. राधाकृष्णन कहते थे कि ''शिक्षा जीवनदायिनी होती है, मुक्तहारी होती है, आत्मिक जड़ता को तोड़ती है, आत्मनियंत्रण सिखाती है और करुणा का विस्तार करती है। यदि वह ऐसा नहीं करे तो वह शिक्षा तो नहीं है, चाहे और कुछ भी क्यों न हो।'' डॉ. राधाकृष्णन ने शिक्षा को ज्ञान, दर्शन और चिन्तन की त्रिवेणी माना था। इस त्रिवेणी में डूबकर शिक्षा की समयानुकूल अपेक्षाओं को पूर्ण करते हुए अपने अस्तित्त्व का परिचय देना ही शिक्षक का सर्वोपरि धर्म और कर्म है। डॉ. राधाकृष्णन शिक्षा को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया मानते हैं जो व्यक्ति और समाज को प्रगतिशील विकास की ओर ले जाती है।

शिक्षक समाज का सच्चा मार्गदर्शक, संस्कृति का पोषक होता है।

डॉ. राधाकृष्णन ने आदर्श शिक्षक के लिए विद्या के प्रति प्रतिबद्धता की अनिवार्यता को प्रमाणित करते हुए शिक्षक को मानवजाति के प्रति उत्तरदायी बताया और कहा कि शिक्षक अपने और जनता के सेवकों के ऊपर सर्वसत्ताधारी होते हैं, वे अपनी भावनाओं पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं और जितना भी संभव हो उतनी मानवता की सहायता करते हैं। यही परंपरा चली आई है। हमारे महान शिक्षक वे रहे हैं जिन्होंने हमारी संस्कृति को जीवित रखा। वे शिक्षक के लिए इस बात को आवश्यक मानते थे कि समाज का शिक्षकवर्ग जिज्ञासु तथा ज्ञान का प्रेमी हो। अपने विषय का उसे अच्छा ज्ञान हो। डॉ. सी.सी. रामस्वामी अय्यर ने डॉ. राधाकृष्णन से शिक्षक कार्य के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि मेरे जीवन में सर्वाधिक सुख की अवधि प्राध्यापक और विश्वविद्यालय में छात्रों के जीवन एवं उन्नति के लिए किये गये प्रयत्न हैं। डॉ. राधाकृष्णन ने कहा कि -

शिक्षा में सुधार की कवायद

शिक्षा किसी भी व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि हम बच्चों को सही शिक्षा दें तभी हम योग्य और कुशल मानव संसाधन का विकास कर सकेंगे। शिक्षा शोध और नवाचार का माहौल बनाने में देश की मदद करती है। शिक्षा देश के नागरिकों के व्यक्तित्व, आचरण और मूल्यों को निखारती है और उन्हें एक विश्व नागरिक बनने में मदद करती है। इसीलिए सभी देश एक निश्चित अंतराल पर शिक्षा में सुधार करने का कठिन प्रयास करते हैं और अपनी शिक्षा नीति की समीक्षा करते हैं। आजादी के बाद से ही हमने इस संबंध में कई बड़े कदम उठाए हैं। सबसे पहले मुदलियार आयोग का गठन हुआ था। उसके बाद कोठारी आयोग बना। 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी थी, जिसे 1992 में संशोधित किया गया था। उसके पच्चीस साल बीत चुके हैं। जाहिर है, आबादी की बदली जरूरतों और शिक्षा, नवाचार तथा शोध के स्तर पर पैदा हुई आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए हमें अपनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर पुनर्विचार करना चाहिए। यह एक सतत् प्रयास है और इसीलिए हम सभी को एक नई शिक्षा नीति का हिस्सा बनना चाहिए, जो कि आम सहमति और विचार विमर्श से विकसित की जा सकती है। यही वजह है कि सरकार ने इस संबंध में जनवरी 2015 में ही पुनर्विचार प्रक्रिया आरंभ कर दी थी। स्कूली शिक्षा के लिए 13 विषय चयन किए गए थे, जिसमें अध्ययन के परिणाम, माध्यमिक शिक्षा, वोकेशनल शिक्षा, परीक्षा टीचर एजुकेशन, सूचना एवं संचार तकनीक का प्रयोग, शिक्षा शास्त्र, स्कूल प्रणाली, समावेशी शिक्षा, भाषा और बाल स्वास्थ्य शामिल थे। आज हर कोई स्कली शिक्षा के लिए इन विषयों की प्रासंगिकताओं को स्वीकारेगा। इससे बढ़कर बात यह है कि कोई भी व्यक्ति इनसे संबंधित अपने सुझाव दे सकता है। उच्च शिक्षा के लिए 20 विषयों का चयन किया गया था, जिसमें उच्च शिक्षा का संचालन, गुणवत्ता, विनियमन, केन्द्रीय संस्थाएँ, राज्य विश्वविद्यालय, कौशल विकास, ओपेन यूनिवर्सिटी, क्षेत्रीय विषमताएँ, लैंगिक और सामाजिक खाई, समाज से जुड़ाव, भाषा, पीपीपी फाइनेंसिंग, उद्योग जगत से जुड़ाव, रिसर्च, नवाचार और नया ज्ञान शामिल हैं। इसके अलावा इसमें कई और विषय भी जोड़े जा सकते हैं। इसके लिए 26 जनवरी 2015 से ऑनलाइन विचार विमर्श की प्रक्रिया आरंभ हुई, जिसके जरिए कुछ बिन्दु रखे गए और उन पर उनके विचार माँगे गए। 31 अक्टूबर, 2015 तक 29 हजार प्रतिक्रियायें प्राप्त हुई थीं। मई 2015 में एक लाख दस हजार गाँवों, 3015 ब्लॉकों, 406 जिलों और 962 स्थानीय निकायों में जमीनी स्तर पर विचार-विमर्श की प्रक्रिया आरंभ हुई। विभिन्न शिक्षा कमेटियों के सदस्यों, शिक्षकों, प्रधानाचार्यों और शिक्षा से जुड़े सभी लोगों ने इन विषयों पर चर्चा की और अपने सुझाव दिए। 21 राज्यों ने भी स्कूली शिक्षा और उच्च शिक्षा पर अपनी प्रतिक्रियायें दी हैं। इस प्रक्रिया के बाद सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में छह जोनल बैठकें की गई थीं। इस योजना बैठक में कई राज्यों के शिक्षा मंत्री भी मौजूद थे। इस प्रकार शिक्षा नीति के संबंध में व्यापक विचार-विमर्श हुआ और इस क्रम में तमाम सुझाव हमें प्राप्त हुए। इसके बाद इन सभी सुझावों को समझने और छाँटने के लिए टीएसआर सुब्रमण्यम की अध्यक्षता में एक कमेटी नई शिक्षा नीति का ड्राफ्ट तैयारी के लिए गठित की गई है। सुब्रमण्यम कमेटी ने बड़े पैमाने पर आए सुझावों की जाँच-पड़ताल की। इस कमेटी ने भी शिक्षा से जुड़े विभिन्न लोागें के साथ बैठक की थी। इस गहन और विस्तृत विचार-विमर्श की प्रक्रिया के बाद कमेटी ने नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मसौदे के विकास के लिए भारत सरकार को अपने सुझाव दिए। इस प्रकार जमीनी स्तर पर विचार-विमर्श की प्रक्रिया से आए सुझाव और सुब्रमण्यम कमेटी की सिफारिशों ने नई शिक्षा नीति पर चर्चा और बहस आरंभ करने के लिए महत्त्वपूर्ण इनपुट दिए हैं। सुब्रमण्यम कमेटी द्वारा दी गई सिफारिशें शिक्षा नीति का मसौदा नहीं है, क्योंकि यह अभी न तो कैबिनेट के समक्ष लाई गई हैं और न ही कैबिनेट ने उन पर मुहर लनगाई है। दरअसल यह सिर्फ नई शिक्षा नीति के मसौदे का एक खाका भर है। यहाँ यह समझना जरूरी है कि किस आधार पर नई शिक्षा नीति का विकास होना चाहिए।

''शिक्षण कार्य गुरुत्तर कार्य है जो जीविका भी है, कर्त्तव्य भी है। गुरु का कार्य है- स्नेह का तेल पूर कर ज्ञान का दीपक जला देना। प्रकाश होगा तो अंधकार अपने आप ही भाग जाएगा उसे भगाना नहीं पड़ेगा। प्रकाश और अंधेरा एक साथ नहीं रह सकते। भारत की सभ्यता, संस्कृति, परम्परा, महापुरुषों के कृत्यों का ज्ञान में शिक्षा को साधन तथा शिक्षक को उसका माध्यम माना था। इस विशिष्ट कार्य हेतु एक शिक्षक में कुछ विशिष्टताओं का होना आवश्यक माना गया है। शिक्षा के क्षेत्र में किसी भी समस्या के हल को बड़ी सहजता से खोज लेने की प्रवृत्ति से वर्तमान सामाजिक परिवेश में एक शिक्षक अन्तर्मन से दार्शनिक भाव से कार्य करे तो वह आत्मविश्वास के साथ बगैर किसी दुविधा के समस्याओं का समाधान खोज सकता है। डॉ. राधाकृष्णन ने जीवन पर्यन्त जिन आदर्शों को सर्वोपरि रखकर एक उत्कृष्ट जीवनशैली हमारे सामने प्रस्तुत की, आज का शिक्षक वर्ग उनसे प्रेरणा लेकर अवश्य ही समाज की उन्नति में सहायक हो सकता है। उन्होंने 'सादा जीवन उच्च विचार' को चरितार्थ किया है। इससे प्रेरणा लेकर वर्तमान शिक्षक वर्ग अपने पद की गरिमा को समाज में उचित स्थान दिला सकता है, स्वयं उन्नति के शिखर को प्राप्त कर सकता है, तब वह निश्चय ही समाज के लिए सकारात्मक परिणाम उत्पन्न कर सकेगा। महान् दार्शनिक, तत्त्वचिंतक, राजर्षि, शिक्षाविद् डॉ. राधाकृष्णन का देहान्त 87 वर्ष की अवस्था में 17 अप्रैल 1975 को हुआ। परन्तु वर्तमान सन्दर्भ में भी उनके शैक्षिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विचार देश ही नहीं समस्त विश्व के लिए प्रासांगिक और उपयोगी हैं। ❑

(स्वतन्त्र लेखक)

भाऊराव देवरस स्मृति व्याख्यान का 23 वाँ पुष्प सम्पन्न

शिक्षा ऐसी हो जो राष्ट्र को राष्ट्र माने : राजपूत

19 अगस्त 2016 को हापुर की स्थानीय मनोहर रीजेंसी में भाऊराव देवरस सेवा न्यास द्वारा 'शिक्षा की चुनौतियाँ एवं निराकरण' विषय पर आयोजित व्याख्यान कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए केन्द्र सरकार के मानव संसाधन विकास राज्य मंत्री डॉ. महेन्द्रनाथ पाण्डेय ने कहा कि आज कई चुनौतियाँ सरकार के सामने हैं। बच्चों के ऊपर पुस्तकों के दबाव के साथ अंक भी ज्यादा से ज्यादा लाने का दबाव है। आज प्रथम श्रेणी लाने का कोई मतलब नहीं है। 90 प्रतिशत अंक लाने वाले को नोटिस किया जाता है। अभिभावक की अपनी इच्छाएँ भी बढ़ गई हैं। अभिभावक चाहते हैं कि जब दूसरे का बच्चा डॉक्टर और इंजीनियर बन सकता है तो मेरा बच्चा क्यों नहीं बन सकता? अभिभावक बच्चों पर अपनी इच्छाएँ न थोपें।

डॉ. महेन्द्रनाथ पाण्डेय ने कहा कि जब देश आजाद हुआ था तो कुछ वोटों को खुश करने के लिए ही कार्य किया गया। यदि उस समय सुधार हो गया होता तो आज यह स्थिति न होती। उन्होंने कहा कि बच्चे मान लेते हैं कि रेल राष्ट्र की सम्पत्ति है, लेकिन उसे समझते नहीं हैं। आज बच्चों के अन्दर राष्ट्रभावना को जगाना जरूरी है। जब तक वह राष्ट्र के लिए नहीं सोचेंगे तब तक देश का विकास नहीं हो सकता। उन्होंने कहा कि शिक्षा सुधार के लिए आज केन्द्र सरकार तेजी से कार्य कर रही है। सरकार नई शिक्षा नीति भी बना रही है। जिस पर चर्चाएँ भी आमंत्रित हैं। आईआईटी ने देश और विदेश में अपना परचम लहराया है।

मुख्य वक्ता के रूप में एनसीईआरटी के पूर्व निदेशक प्रो. जगमोहन सिंह राजपूत ने शिक्षा में सुधार की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि आज भी केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में अध्यापक तक नहीं हैं। ऐसे में हम कैसे कह सकते हैं कि दुनिया में हम शिक्षा के मामले में टॉप सौ यूनिवर्सिटी में शामिल हों। आज ऐसी शिक्षा चाहिए जो राष्ट्र को राष्ट्र माने। युवाओं को इस प्रकार से तैयार करना होगा कि वह अपने लिए नहीं दूसरों के लिए कार्य करे। उन्होंने कहा कि मनुष्य ही अपने आचरण में सुधार ला सकता है। हम कोशिश करें कि बच्चों को देश के इतिहास की जानकारी दें। उन्हें ज्यादा से ज्यादा भाषाओं का ज्ञान करायें। उन्होंने कहा कि आज शिक्षा में लाभ कमाया जा रहा है। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे स्थानीय सांसद राजेन्द्र अग्रवाल ने कहा कि केन्द्र सरकार शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से कार्य कर रही है।

कार्यक्रम में मंच पर अतिथियों के अतिरिक्त भाऊराव देवरस सेवा न्यास के संस्थापक न्यासी ब्रह्मदेव शर्मा 'भाईजी', न्यास के अध्यक्ष डॉ. अवधेश प्रसाद सिंह, संस्थापक न्यासी राजकृपाल गर्ग उपस्थित रहे। नगरपालिका अध्यक्ष मालती भारती, स्वाती गर्ग, कपिल एसएम सहित विभिन्न अनुषांगिक संगठनों के पदाधिकारी एवं कार्यकर्ता तथा अन्य गणमान्य नागरिकों की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

कार्यक्रम का संचालन अनिल अग्रवाल ने किया। न्यास का परिचय न्यासी संजय कृपाल गर्ग ने दिया तथा धन्यवाद ज्ञापन न्यास के सह-सचिव राहुल सिंह ने किया। कार्यक्रम से पूर्व दयासिंह ने भजन की प्रस्तुति दी। कार्यक्रम का समापन वन्देमातरम् के साथ हुआ।

रीवा में गुरु की महत्ता पर प्रकाश डाला गया

मध्यप्रदेश शिक्षक संघ द्वारा शासकीय मार्तण्ड उमावि क्रं. 3, रीवा में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ द्वारा निर्देशित गुरुवंदन कार्यक्रम सम्पन्न हुआ जिसकी अध्यक्षता म. प्र. शिक्षक संघ के प्रांताध्यक्ष प्रदीप कुमार सिंह ने की। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि सेवा निवृत्त संयुक्त संचालक के.के. पाण्डेय रहे। सर्व प्रथम माँ वीणापाणि सरस्वती एवं वेदव्यास के चित्र पर माल्यार्पण, धूपदीप नैवेद्य के द्वारा अर्चण किया गया तत्पश्चात सम्मानित होने वाले शिक्षा विभाग के प्राध्यापक जे.पी. शुक्ला, डॉ. बलराम पाण्डेय, बद्री प्रसाद शुक्ल, पी.एन. चतुर्वेदी, के.के. पाण्डेय, रामानन्द बिडिहा, वी.पी. खरे, संतोष शुक्ला, प्रदीप कुमार सिंह को तिलक लगाकर माल्यार्पण पूजन कर श्रीफल शाल से सम्मानित किया गया है।

इस कार्यक्रम का संचालन करते हुये डॉ. कौशलेन्द्र मणि त्रिपाठी ने कहा कि आदिकाल महर्षि वेद व्यास जी ने ज्ञान संवर्धन हेतु 18 महापुराणों की रचना कर गुरु पद की महत्ता को प्रतिपादित किया है। उसी सन्दर्भ को आगे बढ़ाया। जा रहा है।

इस अवसर पर डॉ. बलराम पाण्डेय ने गुरुपरम्परा के अंतर्गत ज्ञानदान को महत्त्वपूर्ण बताया है। प्रांताध्यक्ष प्रदीप सिंह ने कहा है कि रीवा जिला इकाई विगत कई वर्षों से व्यास पूर्णिमा पर गुरुवंदन, सम्मान की परम्परा की जो नीव रखी है, उसे प्रांताध्यक्ष के नाते मैं साधूवाद देता हूँ, ताकि आगे आने वाले समय में इस परम्परा को जीवंत बनाया जा सके। कार्यक्रम को विस्तार रूप देने में उपाध्यक्ष सुदीप पाण्डेय, संगठन मंत्री राजेन्द्र सिंह सहित सैंकड़ों शिक्षक उपस्थित थे।

प्रो. जगदीश मुखी जी का अभिनन्दन कार्यक्रम

प्रो. जगदीश मुखी जी को अंडमान व निकोबार द्वीप समूह का उपराज्यपाल नियुक्त किए जाने पर उनका अभिनंदन कार्यक्रम–

NDTF परिवार के घनिष्ठ सहयोगी एवं दिल्ली भाजपा के वरिष्ठ कार्यकर्ता प्रो. जगदीश मुखी जी को अंडमान व निकोबार द्वीप समूह का उपराज्यपाल नियुक्त किए जाने पर उनका अभिनंदन कार्यक्रम आयोजित किया गया। प्रो. जगदीश मुखी जी को अपने राजनीतिक जीवन में इस ऊँचाई पर पहुँचने व नए दायित्व के सफल निर्वहन के लिए बधाइयाँ व शुभकामनाएँ देने के लिए बड़ी संख्या में दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व व वर्तमान शिक्षक पहुँचे।

प्रो. जगदीश मुखी जी दिल्ली विश्वविद्यालय के शहीद भगत सिंह कालेज में व्याख्याता पद पर कार्यरत रहे हैं। 1993–98 के कालखंड में वे दिल्ली सरकार में कैबिनेट मंत्री रहे। इस दौरान उन्होंने शिक्षा मंत्रालय और वित्त मंत्रालय की जिम्मेदारी बखूबी संभालते हुए बेहतरीन कार्य किया। उन्हें सर्वश्रेष्ठ विधायक, सर्वश्रेष्ठ नेता विपक्ष भी चुना गया। देश के सभी राज्यों के वित्त मंत्रियों में से सर्वश्रेष्ठ वित्त मंत्री का सम्मान भी प्रो. जगदीश मुखी जी को मिल चुका है। दिल्ली के राजनीतिक पटल पर मुखी जी ने जनकपुरी क्षेत्र से लगातार 7 बार चुनाव जीता।

प्रो. जगदीश मुखी जी को शिक्षा के क्षेत्र में अपने महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए जाना जाता है। इनके सक्रिय प्रयासों से दिल्ली में गुरु गोविंद सिंह खालसा इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, जिसके परिणामस्वरूप दिल्ली के लाखों छात्रों को सस्ती व व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला।

अभिनंदन कार्यक्रम में बड़ी संख्या में युवा व वरिष्ठ शिक्षक शामिल हुए। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए पूर्व NDTF अध्यक्ष व यूजीसी सदस्य श्री इंद्र कपाही ने प्रो. मुखी जी का स्वागत किया और उनका अभिनंदन करते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय में आपकी संघ पृष्ठभूमि व दिल्ली के राज्य बनने के पश्चात की भूमिका का परिचय दिया। उन्होंने आपातकाल को याद करते हुए संघ के स्वयंसेवक के नाते उनके संघर्ष को भी याद किया। NDTF के वर्तमान अध्यक्ष डा. अजय भागी ने प्रो. मुखी का शाल ओढ़ा कर स्वागत किया। आपने मुखी जी को लगातार शिक्षकों की समस्याओं से जुड़े रहने के लिए उनका आभार व्यक्त किया। डा. भागी ने वर्तमान परिप्रेक्ष्य में व्याप्त शिक्षक समस्याओं के सुलझाने में आपकी प्रासंगिकता को महत्त्वपूर्ण बताया। साथ ही अंडमान व निकोबार द्वीप समूह में शिक्षा के क्षेत्र में प्रो. मुखी जी के समक्ष चुनौतियों व अवसरों पर प्रकाश डालते हुए इस कार्यक्रम में भाग लेने आए सभी शिक्षकों का हृदय से आभार व्यक्त किया।

NDTF के महासचिव डा. वीरेन्द्र सिंह नेगी ने कार्यक्रम का संचालन किया। इस कार्यक्रम में कई कालेजों के प्रिंसिपल भी शामिल हुए। दिल्ली विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों के प्रोफेसर व कई वरिष्ठ सेवानिवृत्त शिक्षक भी कार्यक्रम में शामिल हुए। NDTF संगठन के सभी पदाधिकारियों के साथ डूटा व विद्वत् परिषद में चुने प्रतिनिधियों ने भी पुष्पगुच्छ प्रदान कर प्रो. मुखी जी का स्वागत किया।

दिल्ली नगर निगम नेतृत्व से दिल्ली अध्यापक परिषद की वार्ता सम्पन्न

दिनांक 04.08.16 को दिल्ली अध्यापक परिषद् के प्रतिनिधिमंडल ने अध्यक्ष जयभगवान गोयल एवं महामंत्री रतनलाल शर्मा के नेतृत्व में एवं संगठन मंत्री राजेंद्र गोयल के संयोजन में तीनों निगमों के शीर्ष नेतृत्व के साथ विभिन्न शिक्षकों एवं विद्यालयों से संबंधित समस्याओं पर विस्तार से चर्चा हुई। इसमें महापौर उत्तरी दिल्ली नगर निगम श्री संजीव नय्यर, महापौर पूर्वी दिल्ली नगर निगम श्रीमती सत्या शर्मा, महापौर दक्षिणी दिल्ली नगर निगम श्री श्याम शर्मा एवं निगमों के स्थाई समिति अध्यक्ष श्री सुभाष आर्य, श्री प्रवेश वाही, श्री विजय प्रकाश एवं श्री जितेन्द्र उपस्थित थे। परिषद् की ओर से निगम निकाय के अध्यक्ष सुभाष बघेल ने शिक्षकों के वेतन, एरियर के भुगतान में देरी एवं निगम के सभी विद्यालयों को दिए जाने वाले सभी प्रकार के फंड्स जैसे बाल निधि, फुटकर व्यय, बिजली के बिलों का भुगतान न होने की समस्या उठाई। उन्होंने निगम के रिटायर्ड शिक्षकों के पेंशन भुगतान में देरी की बात भी रखी। निगम निकाय के मंत्री दीपक गोस्वामी द्वारा निगम की प्रशासनिक व्यवस्था को चुस्त, शिक्षक एवं छात्र उन्मुखी बनाए जाने, पाठ्यक्रम में सुधार, वर्दी, किताबों का प्रशासन द्वारा समय पर पहुँचाया जाना, शिक्षकों को गैर शैक्षणिक कार्य से मुक्ति दिलाने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने के सन्दर्भ में शिक्षकों का पक्ष रखा। इस अवसर पर परिषद् के अध्यक्ष जयभगवान गोयल ने प्रधानाचार्यों को अधिक प्रशासनिक अधिकार दिए जाने पर जोर दिया जिससे व्यवस्था के समय एवं संसाधनों की फिजूलखर्ची बंद होगी।

उपरोक्त सभी विषयों पर लगभग 2 घंटे विस्तार से चर्चा हुई। निगम के समस्त शीर्ष नेतृत्व ने शिक्षकों, विद्यालयों एवं शिक्षा व्यवस्था की बेहतरी के लिए सभी आवश्यक उपायों पर अपनी प्रतिबद्धता जताई। सभी ने आश्वासन दिया की सभी मुद्दों पर प्राथमिकता दे समयबद्ध उपाय किये जाएंगे।

रुक्टा (राष्ट्रीय) की प्रदेश कार्यकारिणी बैठक सम्पन्न

राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) की विस्तृत प्रदेश कार्यकारिणी बैठक दिनांक 21 अगस्त, 2016 को संगठन उपाध्यक्ष डॉ. रेखा भट्ट की अध्यक्षता में जयपुर में सम्पन्न हुई।

सामूहिक सरस्वती वंदना के पश्चात महामंत्री डॉ. नारायण लाल गुप्ता ने गत बैठक का कार्यवाही विवरण प्रस्तुत किया जिसे सर्वसम्मति से अनुमोदित किया गया। गत बैठक के पश्चात संगठन की गतिविधियों एवं उपलब्धियों का लेखा जोखा महामंत्री द्वारा विस्तार से बताया गया। इसके बाद गुरु वंदन कार्यक्रम एवं 1 से 15 जुलाई तक सम्पन्न सदस्यता अभियान की समीक्षा की गयी। इस बार की कुल सदस्यता 5673 रही जो पिछले वर्ष से लगभग 450 ज्यादा रही। इकाईश: सम्पन्न गुरु वंदन कार्यक्रमों की संख्या 132 रही, महामंत्री द्वारा सभी कार्यकर्ताओं एवं सदस्यों का इस सहयोग हेतु आभार जताया गया। बैठक के अगले चरण में राजस्थान विश्वविद्यालय के कुलपति श्री जगदीश प्रसाद सिंघल ने 7वें वेतन आयोग एवं यूजीसी पे रिव्यू कमेटी के संबंध में शैक्षिक महासंघ की उच्च शिक्षा संवर्ग की राष्ट्रीय कार्यसमिति की दिल्ली में सम्पन्न बैठक की विस्तृत जानकारी देते हुए यूजीसी पे रिव्यू कमेटी को प्रस्तुत किए जाने वाले प्रतिवेदन के बारे में बताया।

अगले सत्र में शिक्षक समस्याओं पर चर्चा में प्रदेश के प्रत्येक जिले से आए शिक्षक प्रतिनिधियों ने बताया कि सरकार द्वारा महाविद्यालय शिक्षकों के पदनाम परिवर्तन के संबंध में केंद्र सरकार से झूठ बोलने, असंवेदनशीलता बरतने तथा राज्य की उच्च शिक्षा को जानबूझकर उपेक्षित करने के कारण सरकार के प्रति गहरा आक्रोश एवं निराशा है। शिक्षकों द्वारा शिक्षा मंत्री श्री कालीचरण सराफ द्वारा की गई घोषणाओं को उनके द्वारा पूरा नहीं करवा पाने पर गहरा रोष प्रकट किया गया। कार्यकारिणी बैठक में चले मंथन में देश भर में बदलाव होने, यूजीसी द्वारा व्याख्याता पदनाम समाप्त करने, मंत्रीजी की घोषणा को ढाई वर्ष से अधिक होने के बावजूद पदनाम परिवर्तन नहीं करने से कालेज शिक्षकों के धैर्य चूकने एवं आंदोलन का रास्ता पकड़ने पर मतैक्य रहा। कार्यकारिणी ने यह निर्णय किया ह कि यदि सरकार शीघ्र ही इस विषय में सकारात्मक निर्णय नहीं लेती है तो प्रदेश के उच्च शिक्षा में कार्यरत शिक्षक विधानसभा के शीतकालीन सत्र में महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों से बाहर आकर सड़क पर आंदोलन करने उतरेंगे। इसके पश्चात सितंबर/अक्टूबर में शिक्षा की गुणवत्ता से संबंधित विभिन्न विषयों पर सम्पन्न होने वाली संगोष्ठियों के विषय स्थान एवं तिथियों पर चर्चा कर माह के अंत में अंतिम रूप देने का निर्णय किया गया। समारोप सत्र में उद्बोधन देते हुए शैक्षिक मंथन पत्रिका के संपादक संतोष पाण्डेय ने कहा कि हमें व्यक्तिगत एवं संस्थागत गुणवत्ता पर जोर देना होगा। उन्होंने कहा कि हमें केवल प्रश्न ही नहीं उठाने हैं बल्कि समाधान भी प्रस्तुत करना है। अंत में गत बैठक के पश्चात परम तत्व में लीन शिक्षक साथियों को श्रद्धांजलि देते हुए दो मिनट मौन रखकर प्रार्थना की गई। सामूहिक कल्याण मंत्र के साथ बैठक सम्पन्न हुई।

रुक्टा (राष्ट्रीय) द्वारा पौधारोपण

रुक्टा (राष्ट्रीय) की उदयपुर इकाई द्वारा राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय में वृक्षारोपण कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर मुख्य अतिथि भारतीय किसान संघ के चित्तौड़ प्रान्त के संगठन मंत्री श्री हेमराज ने अपने कर कमलों से पौधारोपण कर अभियान का शुभारम्भ किया। इस अवसर पर प्राचार्य डॉ. रामेश्वर आमेटा, इकाई सचिव डॉ. कुसुम मित्तल, इकाई सह सचिव मुकेश व्यास, विनिता कोठारी, विभाग सचिव डॉ. मनोज बहरवाल, विभाग सहसचिव डॉ. अशोक सोनी, प्रदेश कार्यकारिणी सदस्य डॉ. सुदर्शन सिंह राठौड़, प्रदेश उपाध्यक्ष डॉ. रेखा भट्ट, स्टाफ क्लब सह सचिव डॉ. बालूराम बारहट, सहायक निर्देशक कॉलेज शिक्षा डॉ. वीणा सनाढ़्य ने अपने हाथों से एक-एक पौधा लगाया। महाविद्यालय परिसर को हरितिमा युक्त बनाने के लिए संगठन के सभी सदस्यों ने उक्त पौधारोपण में भाग लिया। इस अवसर पर श्री हेमराज ने कहा कि हमें हमारे आवासीय स्थानों पर भी उपयोगी वृक्ष लगाकर उनका संरक्षण करना चाहिए। संकाय सदस्यों को सम्बोधित करते हुए कहा कि यदि हम अभी से सजग नहीं हुये तो पर्यावरण प्रदूषण से आने वाली पीढ़ियों को नहीं बचा पायेंगे। प्रत्येक व्यक्ति प्रतिवर्ष 1 पौधे का बालक की भांति पालन पोषण ओर सुरक्षा करेगा तभी हमारे इस वृक्षारोपण कार्यक्रम की सार्थकता होगी। इस अवसर पर संकाय सदस्यों एवं छात्राओं ने कार्यक्रम में भाग लिया।

राजर्षि महाविद्यालय अलवर इकाई द्वारा दिनांक 10 अगस्त 2016 को महाविद्यालय के विभिन्न विभागों के सामने वृक्षारोपण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। जिसमें विभिन्न छायादार वृक्षों को न केवल लगाया गया वरन कार्यकारणी सदस्यों द्वारा उनके पोषण एवं रक्षण का संकल्प भी लिया गया है। रुक्टा (राष्ट्रीय) के प्रान्तीय संयुक्त मंत्री डॉ. गंगाश्याम गुर्जर ने बताया कि संगठन द्वारा राजस्थान के समस्त महाविद्यालयों में वृक्षारोपण कार्यक्रम आयोजन किया जा रहा है एवं उनके पोषण व रक्षण का संकल्प भी लिया जा रहा है। इस अवसर पर राजर्षि महाविद्यालय के प्राचार्य व शिक्षकगण उपस्थित थे।